समकालीन सृजन का वार्षिक आयोजन

वर्ष-1 अंक-1, मई 2014

ISSN 2348-9960

संपादक
श्रीप्रकाश

संपादन सहयोग
राहुल देव

आवरण
कुंवर रविन्द्र

भीतरी रेखांकन
अशोक 'अंजुम'

मुद्रक
अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद

मूल्य (एक प्रति) **50 रूपए**
(रजिस्टर्ड डाक से 20 रुपए अतिरिक्त)

संपादकीय कार्यालय
9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग
महमूदाबाद (अवध), सीतापुर (उ.प्र.) 261203
मो. +91 9454112975

ईमेल : samvedan.sparsh@gmail.com
ब्लॉग : samvedan-sparsh.blogspot.in
संवेदन फेसबुक पर :
www.facebook.com/samvedanmagazine
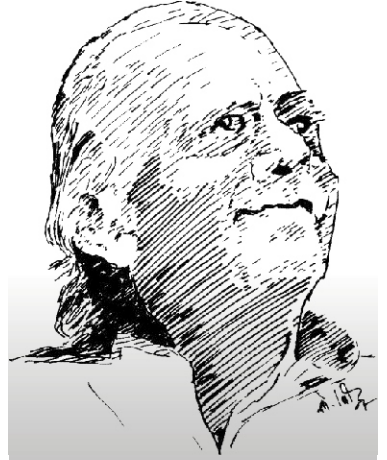
अमर
कथाशिल्पी
अमरकांत
की
पुण्य स्मृति में

|| इस अंक में ||

	इस अंक में	
	इस अंक में	
	इस अंक में	
	इस अंक में	
	इस अंक में	

|| इस अंक में ||

|| इस अंक में ||

श्रीप्रकाश

'संवेदन'- एक प्रयास, एक पहल। सृजन के क्षेत्र में- सृजन यानी रचना । रचना के चार प्रमुख स्तंभों- साहित्य, कला, शोध व विमर्श को समग्रता में लेकर चलने की एक कोशिश का नाम है- 'संवेदन' । प्रायः यह देखा जाता है कि प्रथम पुस्तक प्रकाशन पर लेखक/कवियों की उत्सुकता-उत्तेजना कुछ ज्यादा ही रहती है । उदीयमान रचनाकारों में तो यह आदत देखते ही बनती है, उनका रचनाकर्म मात्र पुस्तक छप जाने और फिर लोकार्पण, समीक्षा की यात्रा तक परिलक्षित होता है । चलो खैर...

यदि कहा जाये कि हिंदी में ज्यादातर समीक्षाएं पूर्वाग्रह से ग्रसित होतीं हैं तो गलत न होगा। यह प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। रचनाकार यदि समीक्षक का मित्र है तो प्रशंसा और यदि मित्र नहीं है तो धुनाई शुरू। आलोचना के टूल्स को आत्मसात किये बगैर आलोचना हो रही है। इसके अतिरिक्त सामाजिक विकृतियों से साहित्य भी अमुक्त है। अब तक तो केवल राजनीति में ही भाई भतीजावाद सुनने को मिलता था, अब यह साहित्य जगत में भी देखने को मिलने लगा है ।

साहित्य में ऐसी तमाम विसंगतियां धीरे-धीरे अपने पैर फैला रही हैं जिसकी वजह से रचनाओं की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगता है। उसका सामान्य जन से वह जुड़ाव नहीं बन पा रहा, प्रकाशन में भी बाजारवाद अपने चरम पर है। यह चिंता का विषय है। रचनाकारों के विचारों पर इस सबका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कई बार ऐसी स्थिति हो जाती है कि लेखक के समक्ष उसकी बुद्धि ही कुंठित हो जाती है। वह बेचारा करे तो क्या करे ? पुरस्कारों की स्थिति तो और भी दयनीय है। कुछ चालाक लेखक/कवि पुरस्कार प्राप्त करने के लिए जोड़-तोड़ का खेल भी करते हैं। ऐसे रचनाकार अपने रचनाकार्य पर क्या वास्तविक ध्यान दे पाते होंगे ? जबकि उनकी बौद्धिक चेतना किसी अन्य उद्देश्य के लिए पागल मन की भांति इधर-उधर भटकती फिरती रहती है। इस प्रकार की स्थितियां साहित्यिक वातावरण को दूषित कर रहीं हैं, वे वास्तविकता से बहुत दूर निकल जातीं हैं।

इस विषादपूर्ण कठघरे से साहित्य कब और कैसे उबरेगा इस पर दृष्टि डालने की अब जरूरत है । राजनीति की तरह साहित्य के क्षेत्र में भी अशुभ, झूठ-फरेब, संकीर्णता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद आदि का खुला नृत्य शुरू हो चुका है। इससे हटकर हमें सर्जना करनी होगी।

हिंदी साहित्य जगत में चल रही रचनात्मक गतिविधियों को तमाम गुटबाजी से परे एक स्वतंत्र मंच प्रदान करने तथा उनके प्रयासों को क्षेत्रीयता से उठाकर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाने तथा पूरी तरह से समकालीन और स्तरीय सृजन के प्रति समर्पित है यह मंच जिसका नाम दिया गया है– 'संवेदन' । जब हमने इस मंच के गठन का विचार किया तो बहुत से लोगों ने, संस्थाओं ने, प्रकाशन संस्थानों और पत्र-पत्रिकाओं आदि ने हर तरह से सहयोग का आश्वासन दिया जिससे हमारे प्रयासों को और ऊर्जा मिली और हमें एक आशा की किरण दिखाई दी।

बहुत समय से हमारी यह भी इच्छा थी कि समकालीन रचनात्मक हस्तक्षेप की कुछ चुनिन्दा रचनाओं को लेकर एक पत्रिका निकाली जाय। हालाँकि पत्रिका निकालने के बारे में सोचना और उसे निकालकर चलाते रहना दो अलग-अलग बातें हैं फिर भी मित्रों के हर प्रकार से सहयोग व विश्वास के आश्वासन पर हमें बल मिला और इस तरह पत्रिका की अंतर्वस्तु व संकल्पना साकार हुई तथा सामग्री आमंत्रित कर चयन शुरू हो गया। अभूतपूर्व तरीके से मिले हर प्रकार के सहयोग के लिए हम सभी सुधीजनों के हार्दिक आभारी हैं। परस्पर संवाद के इस यज्ञ में आप सबका सहयोग, आशीर्वाद और मार्गदर्शन हमारा संबल बनेगा, ऐसा विश्वास है । हमारा एक उद्देश्य यह भी है कि साहित्य की छोटी-छोटी लौ'ओं को मिलाकर एक बड़े स्तर पर समवेत रूप से लाया जाय जिससे साहित्य की मशाल पूरी चमक के साथ अपनी रौशनी बिखेर सके।

वार्षिक पत्रिका के प्रकाशन के अतिरिक्त जमीनी स्तर पर भी 'संवेदन परिवार' नियमित रूप से अपनी काव्य-गोष्ठियों, विचार-गोष्ठियों, पुस्तक परिचर्चा, कार्यशालाएं, एवं विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से भी लगातार साहित्य जगत में अपनी सक्रियता बनाये हुए है जिसका केंद्रबिंदु अवध अंचल का प्रसिद्ध नगर तथा उ.प्र. की राजधानी लखनऊ है। पूरे देश में लखनऊ शहर अपनी नवाबी नज़ाकत व नफ़ासत के लिए तो मशहूर है ही, साथ ही अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत के एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में भी जाना जाता है । उम्मीद है कि उसी परम्परा का एक नए रूप में संवाहक बनेगा 'संवेदन'।

प्रस्तुत अंक में पठनीय संस्मरण, स्तरीय कविताओं, डायरी, व्यंग्य के अलावा चयनित तीनों कहानियां भी अलग से ध्यान खींचने वाली हैं। साथ ही साथ ग़ज़लें, लघुकथाएं, नवगीत आदि भी जीवन के यथार्थ की सीधी व्यथा-कथा से अभिसिंचित हैं। पत्रिका के परिचर्चा और विमर्श खंड में प्रश्नों के साथ उनके उत्तरों की भी तलाश की गयी है। पत्रिका का कला और शोध पक्ष भी नई सोच और नवदृष्टि को समेटे हुए अत्यंत सामयिक और सटीक है।

तो अब जो भी, जैसा भी बन पड़ा है। 'संवेदन' का मुख्य रूप से कविता केन्द्रित यह प्रवेशांक आप सबके सामने है। मैं अपने प्रयास में कितना सफल हो पाया हूँ यह तो आप सबकी प्रतिक्रियाओं के बाद ही पता चलेगा। एक निवेदन और है कि हमारा कि यह प्रयास नितान्त व्यक्तिगत आर्थिक सहयोग का परिणाम है अत: यथासंभव पत्रिका की प्रति खरीद कर पढ़ें, ताकि पत्रिका प्रकाशन नियमित व अबाध रूप से बना रहे। स्थानाभाव के कारण हम कुछ रचनाओं को चाहकर भी इसमें नहीं ले पाए हैं, वे रचनाएँ आगामी अंक के लिए सुरक्षित कर लीं गयीं हैं।

आप सबकी प्रतिक्रियाओं के इंतज़ार में...

- श्रीप्रकाश
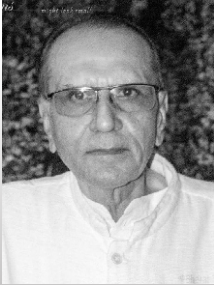
रवीन्द्र कालिया

वर्ष 2013 के कुछ दुखद समाचारों से हम उबर ही रहे थे कि नए साल 2014 ने भी शुरूआत में ही अमरकांत जी के देहावसान की खबर का एक बहुत बड़ा झटका दे दिया। उनका चले जाना निश्चित रूप से हिंदी साहित्य जगत के एक युग का अवसान है। उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रस्तुत है वरिष्ठ साहित्यकार रवीन्द्र कालिया का स्मरण लेख।

हिंदी के चेखव का जाना

अमरकांत जी का निधन हिंदी साहित्य समाज के साथ-साथ विशेष रूप से मेरे लिए एक बहुत बड़ी क्षति है। मुझमें प्रगतिशील चेतना का बीजारोपण उन्होंने ही किया। कह सकते हैं कि मेरे व्यक्तित्व को तराशने में उनका बहुत बड़ा योगदान है। उनसे पहली बार मैं 1962 में मिला था, जब परिमल की एक गोष्ठी में हिस्सा लेने इलाहाबाद गया था। तब तक मैं उनकी कहानी डिप्टी कलेक्टरी पढ़ चुका था। इसलिए कुछ मित्रों के साथ उनके घर भेंट करने गया। वह लेबर कालोनी के एक साधारण से घर में रहते थे। हम लोगों के लिए चाय की व्यवस्था करवाने में उन्हें लगभग एक घंटा लग गया। उस समय वह मात्र ढाई सौ रुपये की नौकरी करते थे। फिर जब मैंने 1970 के आसपास धर्मयुग की नौकरी छोड़ी, तो इलाहाबाद में ही बस गया। तब तो अमरकांत जी से रोज़ का मिलना-जुलना शुरू हो गया। वह काफी संकोची स्वभाव के थे और दूसरों को अपनी परेशानियाँ नहीं बताते थे। लेकिन काफी घनिष्ठता के बाद वह मुझसे अपने सुख-दुःख की बातें बताने लगे। दिल्ली में मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव की तिकड़ी की तरह ही इलाहाबाद में मार्कंडेय, शेखर जोशी और

अमरकांत की तिकड़ी थी।
हालांकि उन्होंने कई उपन्यास भी लिखे, लेकिन वह मूलतः कहानीकार थे। वह मध्यमवर्गीय जीवन के बहुत बड़े चितेरे थे। मध्यवर्ग के सुख-दुःख, चिंताओं, अंतर्विरोधों को उन्होंने जिस तरह अपनी कहानियों में कलात्मक अभिव्यक्ति दी, वह अनूठी है। जैसे प्रेमचंद ने किसानों के जीवन को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा, उसी तरह से अमरकांत मध्यवर्गीय जीवन के प्रतिनिधि कथाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रगतिशील चेतना को आगे बढ़ाने का काम किया। वह ऊपर से जितने सरल दिखते थे, उनके अन्दर उतनी ही आग जलती थी, जिसे आप उनकी कहानी 'हत्यारे' पढ़कर जान सकते हैं। यशपाल ने उन्हें 'हिंदी का गोर्की' बताया था, पर मेरा मानना है कि वह 'हिंदी के चेखव' थे। शायद यशपाल ने उनके क्रन्तिकारी जीवन को देखते हुए उन्हें गोर्की बताया हो, लेकिन उनकी रचनाधर्मिता चेखव के अधिक करीब थी। सरल भाषा में जटिल यथार्थ का चित्रण करने वाले वह अन्यतम कथाकार थे।

उनका पहला (सूखे पत्ते) और अंतिम उपन्यास (इन्हीं हथियारों से) काफी चर्चित हुआ। सूखे पत्ते एक छोटा सा उपन्यास है, जिसमें उन्होंने किशोरवय के प्रेम और समलैंगिक संबंधों का चित्रण किया है। हिंदी में उग्र के बाद उन्होंने ही समलैंगिकता को साहित्य का विषय बनाया था। अमरकांत स्वतंत्रता आन्दोलन के सिपाही थे। उनके कई साथी ब्रिटिश शासनकाल में जेल में थे। स्वतंत्रता आन्दोलन का वह दौर उनका प्रामाणिक अनुभव था। उनका आख़िरी उपन्यास स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर ही है, जिसमें बलिया को केंद्र में रखकर उन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन की जातीय स्मृति को रेखांकित किया है। इसी उपन्यास पर उन्हें साहित्य अकादमी सम्मान मिला, और बाद के वर्षों में पूरे साहित्यिक अवदान पर ज्ञानपीठ पुरस्कार।

हिंदी के इतने बड़े कथाकार होने के बावजूद अमरकांत कभी आत्ममुग्ध नहीं रहे, जिसके शिकार अक्सर साहित्यकार हो जाते हैं। सादा जीवन उच्च विचार ही उनका आदर्श रहा। अपने जीवन में वह हमेशा अभावों में ही रहे, पर कभी पद, पैसा या पुरस्कार के पीछे नहीं भागे। यह हिंदी समाज और प्रकाशन जगत की सांस्कृतिक विपन्नता ही है कि पचास पुस्तकें लिखने के बाद भी अमरकांत को अभावों में जीवन बिताना पड़ा। यूँ तो वह बहुत संकोची थे, पर एक बार बहुत दुखी होकर उन्होंने किसी पत्रकार को बता दिया कि उनके घर में मात्र पंद्रह दिन का ही राशन बचा है। फिर उन्हें कई जगहों से आर्थिक सहायता मिली। उनमें एक ही महत्त्वाकांक्षा थी- अच्छा लेखन करने की। वह यही प्रेरणा अपने बाद की पीढ़ियों को दिया करते थे। आज वह हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी अक्षर संपदा आने वाली पीढ़ियों को बेहतर लेखन एवं जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्रेरणा देती रहेगी। उनका जाना हिंदी समाज के ऐसे लेखक का जाना है, जिसने जीवन भर संघर्ष करने के बावजूद कभी उसूलों से समझौता नहीं किया।

('अमर उजाला' से साभार)

विमलेश त्रिपाठी

जन्म 1979। शिक्षा- स्नातकोत्तर, बीएड, कलकत्ता विश्वविद्यालय में शोधरत। देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, समीक्षा, लेख आदि का प्रकाशन। सांस्कृतिक पुनर्निर्माण मिशन की ओर से काव्य लेखन के लिए युवा शिखर सम्मान। भारतीय ज्ञानपीठ का नवलेखन पुरस्कार, सूत्र सम्मान एवं राजीव गाँधी एक्सीलेंट अवार्ड और 2014 का भारतीय भाषा परिषद् का युवा पुरस्कार। 'हम बचे रहेंगे' कविता संग्रह, नई किताब, दिल्ली से, 'अधूरे अंत की शुरुआत', कहानी संग्रह, भारतीय ज्ञानपीठ से तथा 'एक देश और मरे हुए लोग' कविता संग्रह, बोधि प्रकाशन से प्रकाशित। एक उपन्यास 'कैनवास पर प्रेम' शीघ्र प्रकाश्य। कविता-कहानी का अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद। फिलहाल परमाणु ऊर्जा विभाग के एक यूनिट में कार्यरत हैं।

संपर्क सूत्र-
साहा इंस्टिट्यूट ऑफ़ न्यूक्लियर फिजिक्स, 1/ए.एफ., विधान नगर, कोलकाता -64
ईमेल - bimleshm2001@yahoo.com

आत्मकथ्य

मेरा जन्म ऐसे परिवेश में हुआ जहां लिखने-पढ़ने की परम्परा दूर-दूर तक नहीं थी। कहने को हम ब्राह्मण थे, लेकिन मेरे बाबा को क भी लिखने नहीं आता था, शायद यही वजह है कि पुरोहिताई का काम मेरे परिवार से कभी नहीं जुड़ा। लेकिन अनपढ़ होने के बावजूद बाबा को तुलसी दास की चौपाइयां याद थी। गांव में जब भी गीत-गवनई होती और उसमें अक्सर रामचरित मानस के छन्द ही गाए जाते मैंने हमेशा देखा था कि बिना पुस्तक देखे बाबा छन्द गाते चले जाते थे, मेरा चुप-चाप उनके पीछे बैठना और गाते और झाल बजाते हुए उनकी हिलती हुई पीठ और उस पर रखा गमछा जरूर याद आते हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि कविता से मेरा पहला परिचय यहीं से होता है बाद में जब मुझे अक्षरों का ज्ञान हुआ तो बालभारती के अलावा जो पुस्तक सबसे ज्यादा आकर्षित करती थी वह रामचरित मानस ही थी, मैं सबकी नजरें बचाकर (यह संकोचबस ही था शायद) उस भारी-भरकम पुस्तक को लेकर किसी घर में बैठ जाता था और लय और पूरी तन्मयता के साथ गाता चला जाता था 'श्री राम चन्द्र कृपालु भजुमन....'

बचपन गांव में बीता। लेकिन एक दिन बाबा को लगा कि यह लड़का नान्हों की संगत में

पड़कर बिगड़ रहा है। उस समय मेरे मित्रों में ज्यादातर लड़के ऐसे थे जिन्हें उस समय की गंवई भाषा में चमार-दुसाध और मियां कहा जाता था। उन दोस्तों के साथ अक्सर मैं भैंस चराने निकल जाता, घास काटता, नदी नहाता और उनके घर खाना भी खा लेता था। बाबा पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन उनके अन्दर ब्राह्मणत्व कूट-कूट कर भरा हुआ था। सो उन्होंने मेरे पिता को आदेश दिया कि इसे यहां से हटाओ नहीं तो यह लड़का हाथ से निकला जाता है।

इस तरह गांव छुटा या छुड़ा दिया गया। लेकिन गांव, खेत, बगीचे और दोस्तों के लिए मैं कितना रोया- कितना रोया, आज उस छोटे बच्चे के बारे में सोचता हूं और उसका रोना याद आता है तो मेरी आंखें आज भी नम हो जाया करती हैं। अपने गांव से दूर मुझे कोलकाता भेज दिया गया था आदमी बनने के लिए। 'पंडी जी का पहाड़ा' और 'शहर' कविता उस याद की एक हल्की तस्वीर पेश करती है।

कविताओं की दुनिया ने हमेशा से ही आकर्षित किया। स्कूल में पढ़ते हुए सबसे पहले हिन्दी की किताब ही खत्म होती थी। खत्म होने के बाद भी बार-बार पढ़ी जाती थी- जब मन भर जाता तो बड़े भाई की हिन्दी की किताब पर भी हाथ साफ किया जाता रहा। यह क्रम लगभग दसवीं कक्षा तक बदस्तूर जारी रहा। 10 वीं कक्षा तक सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कवियों में निराला, दिनकर और गुप्त जी रहे। एच.एस. में आने के बाद पहली बार नागार्जुन और अज्ञेय जैसे कवियों से पाला पड़ा। वैसे अज्ञेय की एक कविता दसवीं में पढ़ चुके था, ' मैने आहूति बनकर देखा'। वह कविता तब की कंठस्थ हुई तो आज भी पूरी याद है।

मैं इतना संकोची स्वभाव का रहा हूं कि कभी-भी किसी शिक्षक से यह नहीं पूछा कि और क्या पढ़ना चाहिए। ले-देकर पिता थे जो दिनकर का नाम जानते थे और दिनकर की रश्मिरथि उन्हें पूरी याद थी। फल यह हुआ कि रश्मिरथि मुझे भी लगभग याद हो चली।

कॉलेज में पहली बार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से परिचय हुआ। उनकी कई कविताएं याद हो गईं। लेकिन सबसे ज्यादा निकट जो कवि लगा, वह थे केदारनाथ सिंह। उनकी जादुई भाषा और गांव से जुड़ी उनकी कविताएं बिल्कुल अपनी तरह की लगती थीं। पहली बार लिखने का साहस केदारनाथ सिंह को पढ़ते हुए ही हुआ। कविताएं लिखना तो बहुत समय से चल रहा था लेकिन कविताएं कैसी हैं, यह कौन बताए। अपनी लिखी हुई रचना किसे पढ़ाई जाय। यह समस्या बहुत दिन तक बनी रही। इसके बाद कई मित्र मिले जो लिखने को साध रहे थे। निशांत बाद में चलकर बड़े अच्छे मित्र बने। प्रफुल्ल कोलख्यान और नीलकमल से बातें होने लगीं तो लगा कि अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इसके बाद लगभग हर समकालीन कवियों को पढ़ा। एक-एक संग्रह खरीद-खरीद कर के। बांग्ला की कुछ कविताएं भी भाई निशांत के सौजन्य से पढ़ने को मिलीं।

पहली बार 2003 में वागर्थ में तीन कविताएं छपी। इसके बाद छपने का सिलसिला जारी रहा। इस बीच मानसिक परेशानियां भी खूब रहीं। मनीषा मेरे साथ ही पढ़ती थी और हम एक दूसरे को पसंद करने लगे थे। घर वालों को यह बात नागवार गुजरी थी और काफी जद्दोजहद और संघर्ष के पश्चात ही हमारी शादी हो सकी। मेरी कविताओं में उस संघर्ष की झलक मिलती है।

2006 से 2009 तक लगभग तीन साल तक मैने लिखना पढ़ना बंद कर दिया था। मुझे लगा कि ऐसे माहौल में कोई कैसे लिख सकता है। मेरे व्यक्तिगत जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुईं, साथ ही साहित्यिक जीवन में भी कि मैंने कसम खा ली कि अब लिखना पढ़ना सब बंद। लेकिन बाद में पता चला कि लिखने-पढ़ने के बिना मैं रह ही नहीं सकता। कि लिखने के बिना मेरी मुक्ति नहीं है। और मैं फिर लौटकर आया। इस बीच कोलकाता में उदय प्रकाश के साथ काव्य-पाठ हुआ, उन्होंने कविताओं की दिल से तारीफ

की और कहा कि आपको लिखते रहना चाहिए। मेरे लिखने की तरफ लौटाने में भाई निशांत की भूमिका को मैं कभी नहीं भूल सकता। इसी वर्ष लिखना शुरू किया और इंटरनेट को भी साधना शुरू किया। अब सोच लिया है कि कुछ भी लिखूं वह सार्थक हो। इस लिखने के क्रम में कुछ भी सार्थक लिख पाया तो समझूंगा कि एक श्राप से मुझे मुक्ति मिली और साहित्य और समाज को कुछ (बहुत छोटा अंश) मैं दे सका।

कविताओं में लोक और खासकर गांवों की स्मृतियां ज्यादा हैं। गांव से बचपन में खत्म हुआ जुड़ाव गहरे कहीं बैठ गया था और बार-बार मेरी कविताओं में वह उजागर हो जाता था। बहुत सारी कविताएं गांव की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं और कई कविताओं में गांवों के ठेठ शब्दों का इस्तेमाल भी मैने किया है।

यह भी सही है कि अपनी कुछ ही कविताएं मुझे अच्छी लगती हैं। अभी जो कविताएं लिखी जा रही हैं, उनमें अधिकांश कविताएं मुझे स्पर्श नहीं करती लेकिन कई एक कविताएं झकझोरती भी हैं। मुझे हमेशा लगता है कि अभी मैं कविताएं लिखना सीख रहा हूं। लगभग 15 साल से लगातार लिखता हुआ मैं कभी तो किसी कविता या किसी कहानी से संतुष्ट हो पाता !! यह अवसर अब तक नहीं आया है...कविताओं के कुछ अंश अच्छे लगते हैं पूरी कविता कभी नहीं। एक और बात मुझे कहनी ही चाहिए। कई बार लोग कहते हैं कि तुम इस समय के लायक नहीं हो, तुम बहुत सीधे हो। ऐसे समय में तुम कैसै टिक पाओगे। तुम्हे थोड़ा समय के हिसाब से चालाक बनना चाहिए। लेकिन मैं बन नहीं पाता। मुझे बार-बार लगता है कि जिस दिन मैं चालू बन जाऊंगा, या समय के अनुरूप खुद को चालाक बना लूंगा उसी दिन मेरा लेखक मर जाएगा। इसलिए मैं जैसा हूं वैसा ही बना रहना चाहता हूं... आज न सही लेकिन कभी तो ऐसी कविता संभव हो पाएगी, जिसे लिखना चाहता हूं...।

मैं

चलते-चलते चला आया हूं इस अजनबी दुनिया में
मुझे यहीं जन्म लेना था
यहीं पलना-बढ़ना था

यहां सूरज की रोशनी कम है
रात की अवधि असीम
मैं हाथ बढ़ाता हूं किसी फूल की तरफ
और मेरे हाथ झुलस कर काली छाया में बदल जाते

मैं किसी को चूमने से पहले ही
मुर्दे की तरह बर्फ में बदल जाता हूं

खुद के चेहरे को देखता हूं
तो नाक की जगह आंख
और आंख की जगह कान दिख रहा है

क्या यहां रहकर
मुझे झूठ की चादर ओढ़नी होगी
धोखे और फरेब कर के ही बच सकता हूं मैं

बहुत दिन से ऊब चुका मैं
पास बहती नदी में कुछ शब्द फेंकता हूं
और फिर तेज-तेज चलना शुरू कर देता हूं।

एक देश और मरे हुए लोग

एक मरा हुआ आदमी घर में
एक सड़क पर
एक बेतहासा भागता किसी चीज की तलाश में

एक मरा हुआ लालकिले से घोषणा करता
कि हम आजाद हैं

कुछ मरे हुए लोग तालियां पिटते
कुछ साथ मिलकर मनाते जश्न

हद तो तब
जब एक मरा हुआ संसद में पहुंचा
और एक दूसरे मरे हुए पर एक ने जूते से किया हमला

एक मरे हुए आदमी ने कई मरे हुए लोगों पर
एक कविता लिखी
और एक मरे हुए ने उसे पुरस्कार दिया

एक देश है जहां मरे हुए लोगों की मरे हुए लोगों पर हुकूमत
जहां हर रोज होती हजार से कई गुना अधिक मौतें

अरे कोई मुझे उस देश से निकालो
कोई तो मुझे मरने से बचा लो !

शब्द जो साथ नहीं चलते

शब्द जो साथ नहीं चलते
पेड़ों की ओट से देखते हैं हमारा चलना
और जब हम पहुंच जाते हैं एक जगह
वे चुपके-से आ जाते हैं साथ ऐसे
जैसे कहीं गए ही न हों

लोग जो साथ नहीं रोते
खिड़की की ओट में रोते हैं कातर होकर
धुंधलाई आंखों से

और हमारी खुशी में आ जाते हैं हंसते
जैसे कि कभी रोए ही न हों

न रोको कोई

शब्द और कितने
फ़लसफ़े कितने और
इन दो के बीच फंसे
सदियों के आदमी को
निकालो कोई

कलम बंद करो
मंच से उतरो
चलो इस देश की अंधेरी गलियों में
सुनो उस आदमी की बात
उसको भी
बोलने का मौका दो कोई

अब बहुत हो गया
यह रही कलम
और ये रहे छन्द
मैं जा रहा हूं
सदियों से राह तकते
पथरायी आंखो वाले
उस आदमी के पास
न चल सको तुम
बेशक न चलो
पर मेरे कदमों की रफ्तार
न रोको कोई....

बूढ़े इंतजार नहीं करते

बूढ़े इंतज़ार नहीं करते
वे अपनी हड्डियों में बचे रह गए अनुभव के सफ़ेद कैल्सियम से
खींच देते हैं एक सफ़ेद और खत़रनाक लकीर
और एक हिदायत

कि जो कोई भी पार करेगा उसे
वह बेरहमी से क़त्ल कर दिया जाएगा
अपनी ही हथेली की लकीरों की धार से
और उसके मन में सदियों से फेंटा मार कर बैठा
ईश्वर भी उसे बचा नहीं पाएगा

बूढ़े इंतज़ार नहीं करते
वे काँपते हिलते उबाऊ समय को बुनते हैं
पूरे विश्वास और अनुभवी तन्मयता के साथ
शब्द-दर-शब्द देते हैं समय को आदमीनुमा ईश्वर का आकार
खड़ा कर देते हैं
उसे नगर के एक चहल-पहल भरे चौराहे पर
इस संकल्प और घोषणा के साथ
कि उसकी परिक्रमा किए बिना
जो क़दम बढ़ाएगा आगे की ओर
वह अंधा हो जाएगा एक पारंपरिक
और एक रहस्यमय श्राप से
यह कर चुकने के बाद
उस क्षण उनकी मोतियाबिंदी आँखों के आस-पास
थकान के कुछ तारे टिमटिमाते हैं
और बूढ़े घर लौट आते हैं
कर्तव्य निभा चुकने के सकून से अपने चेहरे की झुर्रियाँ पोंछते

बूढ़े इंतज़ार नहीं करते
वे धुँधुआते जा रहे खेतों के झुरमुटों को
तय करते हैं सधे क़दमों के साथ
जागती रातों की आँखों में आँखें डाल
बतियाते जाते हैं अँधेरे से अथक
रोज़-ब-रोज़ सिकुड़ती जा रही पृथ्वी के दुख पर करते हैं चर्चा
उजाड़ होते जा रहे अमगछियों के एकांत विलाप के साथ
वे खड़े हो जाते हैं प्रार्थना की मुद्रा में
टिकाए रहते हैं अपनी पारंपरिक बकुलियाँ
गठिया के दर्द भुलाकर भी
ढहते जा रहे संस्कार की दलानों को बचाने के लिए

बूढ़े इंतज़ार नहीं करते
हर रात बेसुध होकर सो जाने के पहले
वे बदल देना चाहते हैं अपने फटे लेवे की तरह
अजीब-सी लगने लगी पृथ्वी के नक्शे को
और खूँटियों पर टँगे कैलेण्डर से
चुरा कर रख लेते हैं
एकादसी का व्रत
सतुआन और कार्तिक स्नान
अपनी बदबूदार तकिए के नीचे
अपने गाढ़े और बुरे वक़्त को याद करते हुए

बूढ़े इंतज़ार नहीं करते
अपने चिरकुट मन में दर-दर से समेट कर रक्खी
जवानी के दिनों की सपनीली चिट्ठियों
और रूमानी मंत्रों से भरे जादुई पिटारे को
मेज़ पर रखी हुई पृथ्वी के साथ सौंप जाते हैं
घर के सबसे अबोध
और गुमसुम रहने वाले एक शिशु को

और एक दिन बिना किसी से कुछ कहे
अपनी सारी बूढ़ी इच्छाओं को अधढही दलान की आलमारी में बंद कर
वे चुपचाप चले जाते हैं मानसरोवर की यात्रा पर
याकि अपने पसंद के किसी तीर्थ या धाम पर
और फिर लौट कर नहीं आते...

बहुत जमाने पहले की बारिश

बारिश रह-रह कर होती
तुम्हारी याद भी रह-रह कर आती
याद आना बारिश की याद की तरह होती

बारिश जब रूक जाती
तब बारिश के रूकने का कारण
पत्ते पर अंटके बूंद से पूछता
वह चुप देखती और मुस्कुरा देती

फिर बादल से पूछता
वे रखते एक हसरत भरी निगाह मेरे ऊपर
और आसमान के तहखाने में
कहीं गुम जाते

बारिश न होती तो उसकी याद होती
याद तुम्हारी याद की तरह होती

बाहर जब आसमान साफ होता
बारिश घर के अंदर होती
भीगती रहती सहेज कर रखी
बहुत जमाने पहले की चीजें

तब भी
बारिश
रह-रह कर होती

सपने

सपने अंधेरे में एक जोड़ी आंख थे
स्पर्श प्रेमिकाओं के नरम हाथों के
आंसू थे पलकों पर ढुलके अनजाने

सूखते खेतों में मानसून की पहली बूंद
ददरी के मेले से खरीदे गए मिट्टी के रंगीन खिलौने
नदी के पानी में तैरते-हिलते पत्तों की डोंगियां
थे सपने

कभी-कभी आशिर्वाद के लिए
पितरों के उठे हुए निर्दोष हाथ
मां के परोसे हुए मक्के की रोटी
और प्याज की फारी
हमें सही राह की ओर ले जाने के मनसे से लैस
पिता की फटकार थे सपने

बहुत जमाने पहले बारिश के पानी से भींगते
जेब में नौकरी की अर्जियां थे
दफ्तर की सिढ़ियों पर बेमन
दौड़ते एक जोडी जूते
सामान्य अध्ययन की मोटी किताब के पन्ने में छुपे
एक लड़की के लिखे
आखिरी खत के कांपते शब्द थे
धुंधलाए-से

एक स्त्री की आंख में किसी छूट गए समय का इंतजार थे सपने
मेरे पुरूष को एक आभासी गर्व से लिलते

सब कुछ थे और कुछ भी नहीं थे सपने

बहुत जमाने बाद के एक समय में
वे रात के घनघोर अंधेरे में आते थे
और हमारा सब कुछ लूट कर चले जाते थे...

रवि भूषण पाठक

प्रगतिशील वसुधा, कथाक्रम, जनसंदेश टाईम्स आदि में कविता। अभिनव कदम, शब्दिता, सृजनलोक आदि में आलेख। ऑनलाईन पत्रिकाओं जानकीपुल, सिताबदियारा, असुविधा, पहली बार, अनुनाद आदि पर भी कविताएं। एक उपन्यास प्रकाशनाधीन। मैथिली साहित्य में भी सक्रियता।
वर्तमान में चकबंदी विभाग, मऊनाथ भंजन, उत्तर प्रदेश में कार्यरत।
संपर्क-
ग्राम-करियन, जिला-समस्तीपुर (बिहार), पिन- 848117
ईमेल - rabib2010@gmail.com

आत्मकथ्य

कविता में बस वही है जो 'मेरा' है, इससे अलग सिद्धांत, जिंदगी, विचार, दर्शन सब लफ्फाजी मात्र है । कविता में मैं इसलिए हूं कि कहीं मुझे साथ-साथ गाना है या मेरे सुर की भी कहीं जरूरत है या फिर मेरे सुर का अभाव ही मुझको खींचता है ।

घर, दीवार और सांकल

1

जब एक से बारह तक मासों का पहाड़ा पूरा होता था
तब खुलती मकानों की जन्मकुंडली
किसमें सूरज जेठ में झांकता था
सहस्त्रों आंखें खोल, बतीसी झलकाता
किस कमरे में पूष की आंखें
चार दीवार भेदकर भी सहराती थी
गाती थी कपास और आग के गीत
मकान का कौन सा कमरा
बचाता इंद्रदेव की लंठई से
और जो कमरा जेठ में हवामहल होता
वही पूष में साइबेरिया हो जाता
पर एक ऐसा भी कमरा था बीच का
जो दिन में रोकता जेठ के सूर्य को

और खुद सिहरकर भी रोक ही लेता पूष की
रात
इन्हीं मकानों में हम, हमारे पिता
पिता ने पाया था पूर्वजों से पहाड़
अपने सर पर सँभाल कर रखते थे
जब तब एक चट्टान हमारी ओर उछाल दिए
करते
इन चट्टानों का कुल धर्म पढ़ते ही बड़े हुए हम
कुल मिला कर मेरा वसंत कहीं भी महफूज नहीं
था

2

अपने घर का छत इतना ऊंचा रखो कि
सर पर गिरना चाहे तो बचने का दो मिनट
मिलजाए
दीवारें इतनी दूर हो कि यदि पीसना भी चाहे
तो दो पाटन से भागने का वक्त मिलजाए
इतनी हल्की हो कि यदि गिर भी जाए
तो रोक लें अपने हाथ से
अपने गोवर्धन अपने कृष्ण

3

दस बाई दस का एक कमरा
जिसमें चार बाई छह की चारपाई एक
चारपाई के नीचे एक स्टोव, एक बाल्टी
आटा, चावल के कुछेक डिब्बे
दो बाई तीन की एक टेबुल
टेबुल पर किताबों का जखीरा
जखीरा दीवार से सटकर खड़ा
दीवारों से जूझता इतिहास
दीवार में हैंगर, कील, रस्सी
रस्सियों पर साफ-गंदे कपड़े
कपड़े पंखे की धुन पर नाचते
सुस्त होते, रूकते
पंखा नचाता घर के गंध को
यह गंध दुनिया से अलग रखता सांकल

4

काठ के सांकल आवाज नहीं करते थे
चूं चूं या किर्र किर्र
हिलने पर बस मर्यादा की तरह
कुछेक मिनट कांपते रहते
दुनिया की पहुंच बस सांकल तक ही थी
सांकल के बाद आदमी शुरू होता था
पर कितना भी मजबूत सांकल हो
यह डर को आने से नहीं रोक पाता था
पर इसकी कमजोरी हमहीं जानते थे
सो चोर जरूर डरते थे इससे
नुकीले खांचों के नैन-नक्श प्रेमियों को भी था
पता
उनके लिए सांकल कभी भी दीवार नहीं था
और इसे वे सबसे अच्छी तरह से जानते थे कि
सांकल किवाड़ों के बीच में होता है
जिसके एक ही हिस्से पर कील चुभा होता है

5

हम ऐसे मकान मालिक की खोज में रहे
जो हमें 'हमारी तरह' रहने दे
पर खोज के दौरान यही जताते रहे कि
हम भी आपकी तरह हैं
रहते वक्त हम हरदम लगाते जैमर
उनकी आवाजों, शिकायतों के खिलाफ
हमारे जैमर का मोटर उनके एक ही इशारों में
उतर आता
उनके संकेतों से हमारा घर हो जाता पारदर्शी
वे अचानक देखने लगते हमारे पैसे, हमारी
गंदगी
हमारी महाप्राण ध्वनियां अक्सर चुभती उनको
हमारा 'श' प्रायः लुंजपुंज होता
आदिम सर्वनाम और क्रियाएं भी न बचा पाती
हमें
हम फिर से खोजने लगते नया मकान

6

बाबूजी प्रत्येक जेठ में एक घर का खपड़ा
दुरूस्त कराते थे
यह सोचकर कि पिछले सालों में तो दूसरा-
तीसरा दुरूस्त ही हुआ है
पर आषाढ़-सावन में हरेक साल पछताते कि
क्यों न सब घर को 'निम्मन-निचुअ' बना लिया
गया
हरेक आसिन खरीदते हजार-पांच सौ नया ईंट
पीले झर रहे ईंटों के स्थान पर नया ढ़ीठ
हरेक कातिक में चुनाई-पुताई होता
अगहनी फसल देता दाग दीवारों में
पूष और माघ में घर का प्रत्येक हिस्सा
जुट, पुआल और आग से भर जाता
फागुन की मस्ती के संग ही
गेहुं का भूसा पहाड़ों की तरह जमा होता
पिछवाड़ों में
चैत और वैशाख में पिता फिर से चिंता करने
लगते जेठ की
खपड़ा के नीचे का फूस कहां मिलता है
खपड़ा 'छाड़ने' किसको बुलाया जाए
या खपड़े को हटा पक्का ही कर दिया जाए
उनके लिए मकान 'मकान' नहीं
यह मौसम के विरूद्ध जिहाद था

7

मकान किराया लेते समय हम मुहल्ला पर गौर
करना नहीं छोड़ते
कि मुहल्ले में राजपूत, बाभन ज्यादा है या
अहीर
कहीं अगल-बगल मुसलमान तो नहीं है
मकान मालिक भी जाति जरूर पूछते
गांव, गोत्र, जिला, प्रांत भी हमारा मददगार होते
या फिर गाली खिल बाते
दिल्ली शहर हमारे जीवन के मध्य में आया
यहां कुछ पहचान हम गुम कर सकते थे
परंतु पैसों में इतनी ताकत नहीं थी कि
वह 'श' को 'स' कर सके
गफलत में जीने वालों को दिल्ली ने सिखाया
कि सन् चौरासी भी कोई साल है।

चुप्पियां

चुप्पियां शोर की विलोम तो कतई नहीं थी
पर कभी-कभी शोर के बाद जन्मी थी
कभी शोर के पकने थकने के बाद
थक कर पसर जाने के बाद भी
कभी-कभी यह तैयारी थी शोर की
कभी आक्रमण की नेस्तनाबूद करने की
लोग चुप थे भय से या ताक में
जातियां चुप थी इतिहास के पहाड़ तले दबकर
कुछ चुप्पियां इतिहास के बाहर भी थी
स्वरलिपियों के मध्य भी रागिनियों के अंदर भी

सात सुर से बाहर

कभी-कभार ही शास्त्रों के अनुकूल
प्राय:सात सूर से बाहर ही
अलग राग-रागिनी में
मात्र द्रुत या विलम्बित ही नहीं
बीच के कई ढ़लान, मार्ग, मोड़, मैदान
बस जीवन का राग

आत्मकथ्य

महेश चंद्र पुनेठा

जन्म 1971, शिक्षा- एम.ए. (राजनीति शास्त्र)। प्रकाशित पुस्तक - भय अतल में (कविता संग्रह), स्वर एकादश तथा कवि द्वादश में कविताएं संकलित। एक आलोचना पुस्तक प्रकाशनाधीन। 'शैक्षिक दखल' पत्रिका का संपादन इसके अतिरिक्त अन्यान्य लेखन, संपादन, कार्यक्रमों व कार्यशालाओं का आयोजन व सक्रिय भागीदारी। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा जन चेतना के विकास कार्य में गहरी अभिरूचि।
संप्रति- रा0इ0 का0 देवलथल, पिथौरागढ़ में अध्यापन।
ईमेल - punetha.mahesh@gmail.com

अपने जन और जनपद के दुःख–दर्द और संघर्ष मुझे हमेशा कचोटते रहे हैं। मैं एक ऐसे अंचल में रहता हू जहाँ का जन दोहरा संघर्ष करता है पहला प्रकृति से दूसरा व्यवस्था से। जिसकी प्रकृति तो बहुत सुंदर है पर जीवन बहुत कठिन। जहाँ प्राकृतिक संसाधन तो बहुतायत में हैं पर लोगों का जीवन अभावों से भरा हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों की लूट से चंद लोग मालोमाल हो रहे हैं और आम पहाड़ी पहाड़ का गुस्सा झेल रहा है। रोजगार के लिए पलायन जिसकी नियति बन चुकी है। बाहर से आने वाले के लिए वहाँ की प्रकृति जितनी मनमोहक है वहाँ के लोगों के लिए उतनी ही क्रूर। वहाँ के जन का प्रकृति से रोज–रोज का संघर्ष चलता रहता है।

मैं अपनी जमीन पर खड़ा होकर दुनिया देखना चाहता हूँ क्योंकि मेरा मानना है यदि हम अपने घर से प्यार नहीं करते तो बाहर से प्यार करने का सवाल ही नहीं होता। इसलिए मेरा प्रयास रहता है कि मैं अपनी कविता में अपने जन और जनपद के इस जीवन और संघर्ष को अधिकाधिक व्यक्त कर सकूँ। उन पहलुओं को उजागर कर सकू जो जीवन को सुंदर बनाने की आशा–आकांक्षा और विश्वास के ताप से भरे हों। इसके लिए अपने जन से निरंतर भाषा सीखने का प्रयास करता हूँ। उसके मुहावरों को पकड़ने की कोशिश करता हूँ

ताकि उसके कहन की शैली को अपनी कविता में उतार सकूँ। इस तरह मेरी कोशिश रही है कि मैं कविता में अपनी धरती और अपने लोगों के ताप-त्रास, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, उत्साह-उल्लास, आशा- आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित कर पाऊँ। साथ ही उस आदमी को दिखाऊँ जो शोषण-उत्पीड़न-अत्याचार को चुपचाप नहीं सहता है बल्कि उसका प्रतिरोध करता है। मुझे प्रतिरोध करता आदमी बहुत आकर्षित करता है। प्रतिरोध दरअसल जीवन की गति का परिचायक है। जहाँ प्रतिरोध नहीं वहाँ मृत्यु है। इसलिए मुझे अपने जनपद में पाया जाने वाला सिंटोला पक्षी बहुत प्रिय है क्योंकि इस पक्षी में मुझे सामूहिकता और प्रतिरोध दिखाई देता है। मैं जीवन में इन मूल्यों को बचाने का पक्षधर हूँ। आज कहीं न कहीं हमारे जीवन से प्रतिरोध का मूल्य गायब होता जा रहा है विशेषरूप से मध्यवर्ग के जीवन से। हम समझौता परस्त होते जा रहे हैं।

संप्रेषणीयता को मैं कविता की पहली शर्त मानता हूं। संप्रेषणीयता का गहरा ताल्लुक उसमें रचे गए मूर्त, ऐन्द्रिक तथा क्रियाशील जीवंत बिंबों से है। ऐसा नहीं है कि संप्रेषणीय कविता में कला नहीं होती। हमारी परंपरा में निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार, विजेंद्र सरीखे अनेक कवि हैं जो संप्रेषणीय भी हैं और कलात्मक भी। मैं मानता हूं कि कला अंतर्वस्तु को और अधिक संप्रेषणीय एवं प्रभावकारी बनाने के लिए होनी चाहिए, न कि अपने बोझ से अंतर्वस्तु को दबा देने के लिए। कला के चक्कर में बात फंसनी नहीं चाहिए। कुछ का मानना है कि आज की कविता में जो जटिलता आ गई है उसका कारण में जीवन की जटिलता है। जब मनुष्य का जीवन जटिल हो गया है तो ऐसे में कविता का जटिल होना स्वाभाविक है। पर मैं इस तर्क से सहमत नहीं हो पाता हूं क्योंकि कवि की सफलता तो इसी बात में है कि जीवन की जटिलता को सहजता और सरलता से प्रस्तुत कर सके। यदि ऐसा नहीं हो पा रहा है तो यह कहीं न कहीं कवि की अक्षमता है।

कविता स्वयं कवि को और उसके पाठकों को और अधिक मानव बनाती है। पढ़ने और लिखने वाले दोनों के मन को धोती है। गलत रास्ते चलने पर सतर्क करती है। डाटती-डपटती है। कभी स्वार्थवश या अनजाने में गलती होती है तो लिखे शब्द धात लगाने लगते हैं- क्यों तुम लिखते कुछ और हो, और अभी व्यवहार कुछ और ही कर रहे हो, ये कैसा आडंबर है कवि महाराज!

कविता का पहला काम स्वयं कवि को संस्कारित करना है, उसके मन-मस्तिष्क को उदात्त करना है। जो कविता इस प्रक्रिया से गुजर कर कागज में उतरेगी वह नि:संदेह सहृदय को भी संस्कारित करेगी। इसके लिए कवि का लोक हृदय से जुड़ना जरूरी है। यहा मुझे आचार्य रामचंद्र शुक्ल याद आते हैं , सच्चा कवि वही है, जिसे लोक हृदय की पहचान हो ,जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं से लिप्त मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इस कथन की सत्यता हम नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन जैसे कवियों की कविताओं में देख सकते हैं। ये कवि लोक से जुड़े रहे। इन्हें लोक की क्रियाओं, रूप, रस, गंध एवं बोली का गहरा अनुभव रहा। इन्होंने स्वयं इस जीवन को भोगा। इसलिए इनकी कविताओं में हृदय को उद्वेलित करने एवं गलत के विरूद्ध खड़े होने की ताकत देने की क्षमता है। मैं इन कवियों की कविताओं को प्रतिमान के रूप में देखता हूं।

सच्चे अर्थों में कविता से जुड़ा हृदय छल-छद्म से भरा नहीं हो सकता है। कभी भी किसी का उत्पीड़न-शोषण नहीं कर सकता है। यदि ऐसा करता है तो शर्तिया मानिए न वह कवि हो सकता है और न कविता का पाठक। वह शब्दों का व्यापारी और खरीददार ही हो सकता है। जिसके लिए कविता लाभ-हानि का कोई व्यापार मात्र होती

है । कविता मुझे विचलित होने से बचाती रही है । मैं जब कभी अपने मार्ग से इधर-उधर हुआ कविता ने हांक लगाई है। हमेशा एक दायित्वबोध बना रहता है उन मूल्यों को बचाए रखने का जिन्हें मैं अपनी कविताओं में व्यक्त करते आया हूं। आज मैं उन मूल्यों की रक्षा करना अपनी अतिरिक्त जिम्मेदारी महसूस करता हूं। मैं अगर आदमी रह पाया हूं तो कविता के कारण । कविता ने मुझे अपने समाज, अपने जन और प्रकृति से जोड़े रखा है। कविता मेरे लिए एक ऐसे पहरेदार की तरह है जो लगातार मेरी चौकसी करती रहती है। मेरा प्रयास रहता है कि कविता के एक-एक शब्द को कागज में उतारने से पहले अपने जीवन व्यापार में उतारू। मेरी दृढ़ मान्यता है कि हमें कविता को जीना चाहिए । यदि हमारे जीवन में कविता नहीं है तब कविता रचने का मतलब मात्र लफ्फाजी करना है । शब्दों द्वारा दूसरों को ठगना है। कविता में हम बड़ी-बड़ी बातें करते रहें ,दर्शन बघारते रहें मगर हमारे व्यक्तिगत जीवन में वे बातें कहीं नहीं दिखाई दें। शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार एवं असमानता के विरोध में लिखते रहें और व्यक्तिगत जीवन में स्वयं यह सब कुछ करते रहें, वह चाहे अपने घर के भीतर बीबी-बच्चों के साथ हो या बाहर अपने से कम हैसियत वाले लोगों के साथ। ऐसी कविता में मेरी आस्था नहीं। केदार बाबू की इस बात से मैं अक्षरष: सहमत हूं कि जो कविता आदमी को अच्छा आदमी बनाने की ओर नहीं ले चलती है वह तो कूड़ा होकर काल-कलवित होगी।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कविता ने मुझे अपनी प्रकृति अपने समय और समाज को समझने की एक दृष्टि प्रदान की है। आम-आदमी के दुःख-दर्द एवं जीवन संघर्षों से जोड़ा है, उससे संवेदित होने की शक्ति प्रदान की है । प्रकृति के सौंदर्य का रसास्वादन करने की एक नई आँख दी है। पहले मेरे पास केवल अपनी ही आँख थी अब मैं कविता की आँख से भी देखता हूं। पहले केवल अपनी ही ज्ञानेन्द्रियाँ थी जिनसे इस जीव-जगत के शब्द-रस-रूप-गंध और स्पर्श का अनुभव ग्रहण करता था अब उन तमाम कवियों की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनको मैं पढ़ता हूं। जो मेरी आखें नहीं देख पाती हैं किसी और की आखें मुझे दिखा देती हैं। जो मेरे कान नहीं सुन पाते हैं किसी और के कान सुना देते हैं। कुछ ऐसा ही रस-गंध-स्पर्श के साथ भी होता है। मैं कभी दागिस्तान नहीं गया न ही चीली के घने जंगलों के बीच और न ही देखे कभी माचापिच्चू के शिखर। इसी तरह देश-दुनिया के अनेकानेक अन्य अंचल। पर मैं इन्हें पहचानता हूं कुछ उसी तरह जैसे रसूल हमजातोव, पाब्लो नेरूदा या कोई अन्य कवि। मुझे ये अंचल यहाँ की प्रकृति और यहाँ के लोग कभी अपने पहाड़ से अलग नहीं लगे। मैं इन सब से एक लगाव महसूस करता हूं। शायद यह इतिहास-भूगोल पढ़ने से नहीं पैदा होता। जब मैं एक अच्छी कविता पढ़ता हूँ मुझे वही आनंद मिलता है जो अपने किसी प्रिय व्यक्ति से मिलने पर। न केवल इतना ही बल्कि जब भी कोई दुःख या अवसाद आ घेरता है कविता उससे उबारने का काम करती है । कविता के पास जाकर सुकून मिलता है। कविता से अपने इस संबंध के बारे में केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में कहूगा- जीवन ने मुझको जब-जब तोड़ा हमने कविता से नाता जोड़ा। कविता के चलते अपने समाज और प्रकृति से मेरी दृष्टि कभी फिरने नहीं पाती। कविता मेरी मानुषी प्रकृति को जागृत रखती है। मेरे लिए कविता एक सांस्कृतिक कर्म है जो भावों को संस्कारित करती है और जीवनानुभवों को समृद्ध करती है। यहाँ जीवन को जीने लायक बनाने की मेरी आकांक्षा व्यक्त होती है जिसे मैं अपने जीवन-व्यवहार में उतारने की हमेशा कोशिश करता हूँ।

माँ का अंतर्द्वंद्व

माँ मैं नहीं समझ पाया
तुम्हारे देवता को
बचपन से सुनता आया हूँ उसके बारे में
पर उसका मर्म नहीं समझ पाया कभी

होश संभाला जब से
दौड़ता ही देखा तुम्हें
किसी न किसी गणतुवा या पूछेरे के घर

काँटा भी चुभा हो किसी के पैर में
हुआ हो कोई दुःख-बीमार
आदमी हो या जानवर
तुमने अस्पताल से पहले गणतुवा के घर की राह पकड़ी
भले ही हर बार राहत मिली हो अस्पताल से ही

पेट काटकर तुमने
न जाने कितने रातों के जागर लगाए
कितने बकरों की बलि दी
पूजा-पाठ -गोदान-यज्ञ तो याद नहीं
किस-किस मंदिर और कितनी बार करवाए
रोग-दोष, दुःख-तकलीफ कभी नहीं भागे
बकायदा बढ़ते ही गए
पिता ने पहले से अधिक शराब पीनी शुरू कर दी
गबन के आरोप में पिता की नौकरी चली गई
कंपनी बंद होने से
बड़ा भाई दिल्ली से घर लौट आया
दहेज न दे पाने की हैसियत
और मंगली होने के चलते
बहन को कोई वर नहीं मिल पाया
उचित पौषिटक आहार के अभाव में
और दिन-रात काम में पिसी होने के कारण
भाभी का गर्भपात हो गया
बछिया मर जाने के कारण
गाय खड़बड़ करने लगी दूध देने में
बकरी को बाघ उठा ले गया
मकान को छत नहीं मिल पाई बीस वर्षों से
जमीन का टुकड़ा खड़िया माफिया ने दबा लिया
नौले का पानी सूख गया
तुम्हें इस सब में भी देव-दोष ही नजर आया

जितने गणतुवा-पूछेरों के घर गई
उतने भूत-प्रेत,
परी-बयाव
आह-डाह,
घात-प्रतिघात,
रोग-दोष
देवता बताए
तुम पूजती रही सभी को
थापती रही
ताबीज बनवाए
झाड़-फूँक करवायी
मुर्गों की बलि दी
कई मंदिरों में बैठी औरात

पर कभी घर में शांति नहीं देखी
एक अदृश्य-अज्ञात भय मंडराता रहा
बाहर से अधिक भीतर दबाता रहा
दरिद्रता से बढ़कर दूसरा दोष है क्या कोई ?

घर में चोरी हुई
तुम चावल लेकर पूछने गई
चौबीस घंटे में बरामदगी की बाजी दी
चौबीस साल बीत गए
हाईकोर्ट में चल रहे मुकदमे को
शर्तिया जीतने की बाजी थी
उल्टा हुआ
जीता-जीता मुकदमा हार गए

जिन गणतुओं को
पता नहीं अपने अतीत का
वह तुम्हारे अतीत का उत्खनन करते रहे
तुम्हारे हर कष्ट की जड़
खंडहरों और ध्वंसावशेषों में लिपटी दिखाते रहे
बात-बात पर
तुम से हाँ की मुहर लगवाते रहे
तुमने इसे दैवीय चमत्कार मान लिया
और जैसा-जैसा कहा वैसा-वैसा करती गई
यदि तुम्हारी मन्नत पूरी हुई
तुमने दसों को बताया
बढ़ गई गणतुवा की टी०आर०पी०
जब बाजी नहीं लगी
अपने भीतर ही दफन कर लिया तुमने उसे

मेरे प्रश्नों-प्रतिप्रश्नों से तुम
भीतर तक सिहर उठती
अपनी कसम देकर चुप करा देती
माँ! तुम सोचती हो
दिल्ली तक अछूती नहीं जिससे
मैं नहीं मानता उसे
इसलिए परेशान रहता हूँ अक्सर

तुम करती रहती हो भक्ति
दिन के दो-दो वक्त जलाती हो दीया
कभी नहीं किया नागा
फिर भी तुम्हारा देवता तुमसे नाराज क्यों हुआ
क्यों कहता है- कि भूल गई है तू मुझे
नहीं चढ़ाया एक फूल
नहीं जलायी एक बाती अरसा गुजर गया
तेरा हर तरह से भला किया मैंने
तू उसी में खो गई
कभी याद नहीं आई तुझे मेरी।

माँ! जिसको तुम देने वाला कहती हो
वह क्यों मांगने लगता है-
दो रात के जागर और एक जोड़ी बकरे
माँ! क्या अंतर है-
तुम्हारे इस देवता और हफ्ता वसूलने वाले दरोगा में
मेरी समझ में आज तक नहीं आया

कैसा अजीब न्याय है उसका
करे कोई- भरे कोई
न जाने कितनी बार सुन लिया
तुम्हारे मुँह से -
पितर का किया नातर को लगता है

मैं कभी पचा नहीं पाया इस न्याय सिद्धांत को
मेरी सहज बुद्धि कहती है कि
सजा उसी को मिलनी चाहिए जिसने अपराध किया हो
सजा भुगतने वाले को पता नहीं
कि उसे किस अपराध की सजा मिली है।

और यह कैसी सजा कि सजा देने वाले को खुश कर दें
तो सारी सजा माफ

माँ! तुम्हारे मुँह से अनेक बार सुन चुका हूँ
कि जहाँ जाओ कुछ न कुछ पुराना निकाल देते हैं
सब खाने-पीने का धंधा है
मुझे लगता है तुम्हारा मोहभंग हो गया है
लेकिन
फिर किसी नए गणतुवा का नाम सुनते ही तुम
क्यों निकल पड़ती हो-
रूमाल की गाँठ में चावल और भेंट बाँध
पूछ करने को
माँ! मैं आज तक
न तुम्हारे इस देवता को समझ पाया
और

न तुम्हारी इस अंध आस्था को
तुम्हें ही कहते पाया
वह बाहर नहीं भीतर होता है
फिर तुम क्यों भटकती रहती हो इधर-उधर
तुम्हारी बाहर की भटकन
भीतर की जकड़न बन गई
मुक्त होना चाहती हो पर मुक्त नहीं हो पाती हो
किसी ने कोशिश भी नहीं की माँ
तुम्हें बाहर निकालने की
जितने आए उन्होंने एक नया धड़ा बाँध दिया
एक त्रिशूल और गाड़ दिया
धूनी रमा दी
जलते दिये में तेल डाल दिया
अगरबत्ती की धुलखंड मचा दी ।
मुझे लगता है माँ तुम
इस मानसगृह से
बाहर निकल पाती तो अवश्य सुकून पाती।

फुंसी

जिसे उभरते देख
मसलकर
खत्म कर देना चाहते हो तुम
लेकिन
वह और अधिक विषा जाती है
तुम्हारी गलती
छोटी सी फुंसी को
दर्दनाक फोड़े में बदल देती है।

काँठी अखरोट

कठिन कविता की तरह होता है काँठी अखरोट
उसके भीतर भी छुपा होता है गूदा
कठोर छिलके के पीछे
यह और बात है कि गूदे से अधिक होता है
छिलका

आसान नहीं होता है तोड़ना उसे
बट्टे या हथौड़े जैसा ही कुछ चाहिए
उसके भीतर प्रवेश करने के लिए

ठीक उसके बीच में पड़नी चाहिए चोट
पकड़ थोड़ी ढीली रह जाय तो
पता ही नहीं चलता
कि किस कोने में जा छुपा अखरोट
फिर ढूँढते रह जाओ
मेज-कुर्सी या चारपाई के नीचे
या फिर दरवाजे के पीछे
ढूँढ-ढूँढकर थक जाओगे जब
अचानक जूते के भीतर पाया जाएगा

मजबूत पकड़ के साथ
पड़ेगी जब सही चोट लगातार
तब कुछ-कुछ होंगे गूदे के दर्शन
आलपिन या किसी नुकीली चीज की जरूरत
होगी
खोप-खोपकर निकालने के लिए उसे
एक टुकड़े का स्वाद खो जाए मुँह में
तब दूसरा टुकड़ा निकल पाएगा
एक माँ की तरह का धैर्य चाहिए
काँठी अखरोट से गूदा निकालने को
बावजूद इसके
कुछ न कुछ गूदा रह ही जाएगा छिलके के साथ
चिपका

ऐसे में दाँती अखरोट क्यों न पसंद आए भला
न बटटा या हथौड़ा
न आलपिन जैसी कोई नुकीली चीज

दाँतों के बीच दबाया हल्का सा
कड़क के संगीत के साथ
पतले छिलके के भीतर से
दिल-दिमाग के आकार सा गूदा हाथ में
छिलका नहीं उलझता गूदे से
पूरा का पूरा
गप्प मुँह के भीतर
बहुत देर तक बना रहता मुँह में स्वाद उसका
मन है कि भरता ही नहीं
दाँती अखरोट की तरह क्यों नहीं हो सकती है
कोई कविता।

वे आ रहे हैं सपने बोने

वे जो तुम्हारी आँखों में
सपने बोने की बात कर रहे हैं
तुम समझ सकते हो
वे तुम्हारी आँखों को क्या समझ रहे हैं

वे जानते हैं अच्छी तरह
जैसा बोया जाएगा बीज
वैसी ही लहलहाएगी फसल

वे यह भी जानते हैं
सबसे फायदेमंद कौनसी फसल है उनके लिए

दरअसल वे
अपने सपनों के बीज
तुम्हारी आँखों में
उगाना चाहते हैं
अपने सपनों को तुम्हारे
जताना चाहते हैं

वे तुम्हारे खेत में
अपने बीज-उर्वरक-कीटनाशक डालकर
भरपूर फसल निचोड़ना चाहते हैं
उन्हें खेते की उर्वरता
और पर्यावरण की नहीं
अपने उत्पादन की चिंता है

सावधान!
खेत मत होने देना अपनी आँखों को।

अरुन श्री

जन्म- 1983, शिक्षा- बी.कॉम., डिप्लोमा इन कम्प्युटर एकाउंटिंग।
लेखन विधाएँ - गज़ल, कविताएँ।
सम्प्रति निजी क्षेत्र में लेखाकार। निवास- मुगलसराय, चन्दौली- 232101
ईमेल - arunsri4ever@gmail.com

आत्मकथ्य

अपने बारें में क्या लिखूं? आत्मसाक्षात्कार का उचित प्रयास नही किया कभी! परिस्थितिवश जो भी अंतस में उपजा, उसी को अपना अस्तित्व होना स्वीकार किया उस क्षण! कभी जीवन का कोई उद्देश्य निर्धारित नही किया! चलता रहा और यही सोचता रहा कि 'बस अगले मोड़ तक'! कितने ही मोड़ पीछे छूट गए, न जाने कितने आगे अभी और मिलेंगे ! लेकिन सोच यही रही 'बस अगले मोड़ तक'! कह सकते हैं कि मैंने यात्रा का चुनाव किया गंतव्य का नही! जीवन मेरे लिए कोई उद्धेश्य नही सिर्फ एक यात्रा है, प्यार के रास्ते संभवतः कभी उद्धार तक पहुंचे। आशावादी हूँ!

देव न हो सकूंगा

सुनो,
व्यर्थ गई तुम्हारी आराधना!
अर्घ्य से भला पत्थर नम हो सके कभी ?
बजबजाती नालियों में पवित्र जल सड़ गया
आखिर!
मैं देव न हुआ!

सुनो,
प्रेम पानी जैसा है तुम्हारे लिए!
तुम्हारा मछलीपन प्रेम की परिभाषा नहीं जानता!
मैं ध्वनियों का क्रम समझता हूँ प्रेम को!
तुम्हारी कल्पना से परे है झील का सूख जाना!
मेरे गीतों में पानी बिना मर जाती है मछली!
मैं अगला गीत 'अनुकूलन' पर लिखूंगा!
सुनो,
अंतरंग क्षणों में तुम्हारा मुस्कुराना सर्वस्व माँगता है!
प्रत्युत्तर में मुस्कुरा देता हूँ मैं भी!
तुम्हारी और मेरी मुस्कान को समानार्थी समझती हो तुम –
जबकि संवादों में अंतर है 'ही' और 'भी' निपात का!
संभवतः अल्प है तुम्हारा व्याकरण ज्ञान–
तुम्हरी प्रबल आस्था के सापेक्ष!
सुनो,
मैं देव न हो सकूंगा!
मेरे गीतों में सूखी रहेगी झील!
मैं व्याकरण की कसौटी पर परखूँगा हर संवाद!
सुनो,
मुझसे प्रेम करना छोड़ क्यों नहीं देती तुम ?

कभी-कभी विस्मृत होते पिता

कभी कभी –
विस्मृतियों से निकल सपने में लौट आते हैं पिता!
पूछते है कि उनके नाम के अक्षर छोटे क्यों हैं!
मैं उन अक्षरों के नीचे एक गाढ़ी लकीर खिंच देता हूँ!
जाते हुए अपना जूता मेरे सिरहाने छोड़ जाते हैं पिता!
मैं दिखाता हूँ अपने बनियान का बड़ा होता छेद!
और जब –
मैं खड़ा होता हूँ संतुष्टि और महत्वाकांक्षा के ठीक बीच,
मेरे पैर थोड़े और बड़े हो जाते हैं!
मैं देखता हूँ पिता को उदास होते हुए!

कभी कभी –
अहाते में अपने ही रोपे नीम से लटके देखता हूँ पिता को !
अधखुली खिड़की से मुझे देखती पिता की अधमरी रूह –
बताती है मुझे नीम और आम के बीच का अंतर !
कुछ और कसैली हो जाती है कमरे की हवा !
मैं जोर से साँस अंदर खींचता हूँ ,
खिड़की की ओर पीठ कर प्रेयसी को याद करता हूँ मैं !
लेकिन सीत्कारों के बीच भी सुनता हूँ खांसने की आवाजें !
पिता मुस्कुरा देते हैं !

कभी कभी –
मैं अपने बेटे से पूछता हूँ पिता होने का अर्थ !
वो मुट्ठी में भींची टॉफियाँ दिखाता है !
मुस्कुराता हुआ मैं अपने जूतों के लिए कब्र खोदता हूँ !
अपने आखिरी दिनों में काट दूँगा नीम का पेड़ भी !
नहीं पूछूँगा –
कि मेरा नाम बड़े अक्षरों में क्यों नहीं लिखा उसने !
उसे स्वतंत्र करते हुए मुक्त हो जाऊंगा मैं भी !

अपने पिता जैसे निराश नहीं होना चाहता मैं !
मैं नहीं चाहता कि मेरा बेटा मेरे जैसा हो !

प्रेम पर एक जरूरी कविता !

अनचिन्हे रास्तों पर पदचिन्ह टांकता मैं –
मानचित्र पसारे अपने बीच की दूरी माप रहा हूँ !
और तुम –
यही दूरी बाहें फैलाकर मापती हो !
मैं भीगते देखता हूँ समन्दरों वाला हिस्सा !
और अधगीले कागज पर लिख देता हूँ –
दहकते सूरज की कविता !

आखिरी खत में सिर्फ चाँद उकेरा तुमने ,
मेरे नाम के नीचे !

मैं धब्बों का रहस्य खोजने लगता हूँ !
किसी रहस्यमयी शिखर से –
कुछ पुराने खत पढ़ूंगा किसी दिन
कि तुम्हारा मौन पराजित हो तुम्हारे ही शब्दों से !
निर्माणीय कोलाहल से नादित कविताओं के सापेक्ष
अधिक मुखर है तुम्हारा मौन !

चलो अच्छा, मैं लौट आता हूँ !
फेक देता हूँ दहकती, चीखती कविताएँ,
शब्दों के कूड़ेदान में !
और तुम–
वही से संवाद की सम्भावनाएं तलाशो !
तुम्हारे रुदन और मौन के बीच खड़ा कवि
लिखना चाहता है –
प्रेम पर एक जरूरी कविता !

अंतिम योद्धा

हाँ
मैं पिघला दूँगा अपने शस्त्र
तुम्हारी पायल के लिए !
और धरती का सौभाग्य रहे तुम्हारे पाँव
शोभा बनेंगे –
किसी आक्रमणकारी राजा के दरबार की
फर्श पर एक विद्रोही कवि का खून बिखरा होगा !
हाँ
मैं लिखूंगा प्रेम कविताएँ
किन्तु ठहरो तनिक
पहले लिख लूँ एक मातमी गीत
अपने अजन्मे बच्चे के लिए
तुम्हारी हिचकियों की लय पर !
बहुत छोटी होती है सिसकारियों की उम्र !
हाँ
मैं बुनूँगा सपने

तुम्हारे अन्तः वस्त्रों के चटक रंग धागों से
पर इससे पहले कि उस दीवार पर –
जहाँ धुंध की तरह दिखते हैं तुम्हारे बिखराए बादल
जिनमें से झांक रहा हैं एक दागदार चाँद!
वहीं दूसरी तस्वीर में
किसी राजसी हाथी के पैरों तले है दार्शनिक का सर!
– मैं टांग दूँ अपना कवच
कह आओ मेरी माँ से कि वो कफ़न बुने
मेरे छोटे भाइयों के लिए
मैं तुम्हारे बनाए बादलों पर रहूँगा
हाँ
मुझे प्रेम है तुमसे
और तुम्हें मुर्दे पसंद हैं!

आवारा कवि

पहाड़ से उतरती नदी में देखता हूँ पहाड़ी लड़की का यौवन!
हवाओं में सूंघता हूँ उसके आवारा होने की गंध!
पत्थरों को काट पगडण्डी बनाता हूँ मैं!
लेकिन सुस्ताते हुए जब भी सोचता हूँ प्रेम तो देह लिखता हूँ!
जैसे खेत जोतता किसान सोचता है फसल का पक जाना!

और जब –
मैं उतर आता हूँ पूर्वजों की कब्र पर फूल चढ़ाने –
अधूरी कविताओं को उड़ा नदी तक ले जाती है आवारा हवा!
आवारा नदी पहाड़ों की ओर बहने लगती है!
रहस्य नहीं रह जाते पत्थरों पर उकेरे मैथुनरत चित्र!
चाँद की रोशनी में किया गया प्रेम सूरज तक पहुँचता है!
चुगलखोर सूरज पसर जाता पहाड़ों के आंगन में!
जल–भुन गए शिखरों से पिघल जाती है बर्फ!
बाढ़ में डूब कर मर जाती हैं पगडंडियाँ!

मैं तय नहीं पाता प्रेम और अभिशाप के बीच की दूरी!
किसी अँधेरी गुफा में जा गर्भपात करवा लेती है आवारा लड़की!
आवारा लड़की को ढूंढते हुए मर जाता है प्रेम!

अभिशाप खोंस लेता हूँ मैं कस कर बांधी गई पगड़ी में,
और लिखने लगता हूँ –
अपने असफल प्रेम पर 'प्रेम की सफल कविताएँ' !

लेकिन –
मैं जब भी लिखता हूँ उसके लिए प्रेम तो झूठ लिखता हूँ!
प्रेम नहीं किया जाता प्रेमिका की सड़ी हुई लाश से!
अपवित्र दिनों के रक्तस्राव से तिलक नहीं लगता कोई योद्धा!

दुर्घटना के छाती पर इतिहास लिखता हुआ युद्धरत मैं –
उस आवारा लड़की को भूल जाऊंगा एक दिन,
और वो दिन –
एक आवारा कवि का बुद्ध हो जाने की ओर पहला कदम होगा!

कितनी सच्ची थी तुम, और मैं कितना झूठा था!

तुम्हे पसंद नहीं थी सांवली ख़ामोशी!
मैं चाहता कि बचा रहे मेरा सांवलापन चमकीले संक्रमण से!
तब रंगों का अर्थ न तुम जानती थी, न मैं!

एक गर्मी की छुट्टियों में –
तुम्हारी आँखों में उतर गया मेरा सांवला रंग !
मेरी चुप्पी थोड़ी तुम जैसी चटक रंग हो गई थी!

तुम गुलाबी फ्रोक पहने मेरा रंग अपनी हथेली में भर लेती!
मैं अपने सीने तक पहुँचते तुम्हारे माथे को सहलाता कह उठता –
कि अभी बच्ची हो!
तुम तुनक कर कोई स्टूल खोजने लगती!

तुम बड़ी होकर भी बच्ची ही रही, मैं कवि होने लगा!
तुम्हारी थकी-थकी हँसी मेरी बाँहों में सोई रहती रात भर!
मैं तुम्हारे बालों में शब्द पिरोता, माथे पर कविताएँ लिखता!

एक करवट में बिताई गई पवित्र रातों को –

सुबह उठते पूजाघर में छुपा आती तुम!
मैं उसे बिखेर देता अपनी डायरी के पन्नों पर!

आरती गाते हुए भी तुम्हारे चेहरे पर पसरा रहता लाल रंग
दीवारें कह उठतीं कि वो नहीं बदलेंगी अपना रंग तुम्हारे रंग से!
मैं खूब जोर–जोर पढता अभिसार की कविताएँ!
दीवारों का रंग और काला हो रोशनदान तक पसर जाता!
हमने तब जाना कि एक रंग 'अँधेरा' भी होता है!

रात भर तुम्हारी आँखों से बहता रहता मेरा सांवलापन!
तुम अलसुबह काजल लगा लेती कि छुपी रहे रातों की बेरंग नमी!
मैं फाड देता अपनी डायरी का एक पन्ना!

मेरा दिया सिन्दूर तुम चढ़ाती रही गांव के सत्ती चौरे पर!
तुम्हारी दी हुई कलम को तोड़ कर फेंक दिया मैंने!
उत्तरपुस्तिकाओं पर उसी कलम से पहला अक्षर टांकता था मैं!
मैंने स्वीकार कर लिया अनुत्तीर्ण होने का भय!

तुमने काजल लगाते हुए कहा कि मुझे याद करोगी तुम!
मैंने कहा कि मैं कभी नहीं लिखूंगा कविताएँ!

कितनी सच्ची थी तुम, और मैं कितना झूठा था!
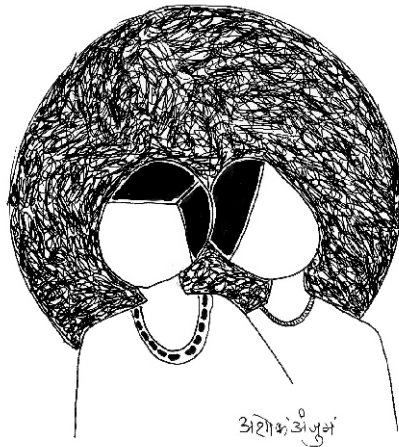
सुशान्त सुप्रिय

जन्म 1968 पटना में। शिक्षा- अमृतसर, तथा दिल्ली में। हिन्दी में अब तक दो कथा-संग्रह तथा एक काव्य-संग्रह प्रकाशित। अनुवाद की एक पुस्तक प्रकाशनाधीन। कई कहानियाँ तथा कविताएँ पुरस्कृत व अनूदित। हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में भी लेखन।
सम्प्रति- संसदीय सचिवालय, नई दिल्ली में अधिकारी।
संपर्क- द्वारा श्री एच. बी. सिन्हा, 5174, श्यामलाल बिल्डिंग, बसंत रोड, (निकट पहाड़गंज) नई दिल्ली - 110055
ई-मेलः
sushant1968@gmail.com

आत्मकथ्य

कविता मेरा आक्सीजन है। कविता मेरे रक्त में है, मज्जा में है। यह मेरी धमनियों में बहती है। यह मेरी हर साँस में समायी है। यह मेरे जीवन को अर्थ देती है। यह मेरी आत्मा को खुशी देती है। मुझमें कविता है, इसलिए मैं हूँ। मेरे लिए लेखन एक तड़प है, धुन है, जुनून है। कविता लिखना मेरे लिए व्यक्तिगत स्तर पर खुद को टूटने, ढहने, बिखरने से बचाना है। लेकिन सामाजिक स्तर पर मेरे लिए कविता लिखना अपने समय के अँधेरों से जूझने का माध्यम है, हथियार है, मशाल है ताकि मैं प्रकाश की ओर जाने का कोई मार्ग ढूँढ़ सकूँ । मेरा मानना है कि श्रेष्ठ कविता शिल्प के आगे संवेदना के धरातल पर भी खरी उतरनी चाहिए। उसे मानवता का पक्षधर होना चाहिए। उसमें व्यंग्य के पुट के साथ करुणा और प्रेम भी होना चाहिए। वह सामाजिक यथार्थ से भी दीप्त होनी चाहिए । कवि जब लिखे तो लगे कि वह केवल अपनी बात नहीं कर रहा, सबकी बात कर रहा है। यह बहुत ज़रूरी है कि कवि के अंदर एक कभी न बुझने वाली आग हो जिससे वह काले दिनों में भी अपने हौसले और संकल्प की मशाल जलाए रखे। उसके पास एक धड़कता हुआ 'रिसेप्टिव' दिल हो। उसके पास एक 'विजन' हो, एक सुलझी हुई जीवन–दृष्टि हो। श्रेष्ठ कवि की कविता कभी अलाव होती है, कभी लौ होती है, कभी अंगारा होती है।

दीवार

बर्लिन की दीवार
न जाने कब की तोड़ी जा चुकी थी
पर मेरा पड़ोसी
अपने घर की चारदीवारी

डेढ़ हाथ ऊँची कर रहा था
पता चला कि
वह उस दीवार पर
कँटीली तार लगाएगा
और उस पर
नुकीले काँच के
टुकड़े भी बिछाएगा

मुझे नहीं पता
उसके ज़हन में
दीवार ऊँची करने का ख्याल
क्यों और कैसे आया
किंतु कुछ समय पहले
उसने मेरे लॉन में उगे पेड़ की
वे टहनियाँ ज़रूर काट डाली थीं
जो उसके लॉन के ऊपर
फैल गई थीं

पर उस पेड़ की परछाईं
उस घटना के बाद भी
उसके लॉन में बराबर पड़ती रही
धूप इस घटना के बाद भी
दो फाँकों में नहीं बँटी,
हवाएँ इस घटना के बाद भी
दोनों घरों के लॉन में
बेरोक-टोक आती-जाती रहीं ,
और एक ही आकाश
इस घटना के बाद भी
हम दोनों के घरों के ऊपर
बना रहा

फिर सुनने में आया कि
मेरे पड़ोसी ने
शेयर बाज़ार में
काफ़ी रुपया कमाया है
कि अब उसका क़द थोड़ा बड़ा
उसकी कुर्सी थोड़ी ऊँची
उसकी नाक थोड़ी ज़्यादा खड़ी
हो गई है
मैं उसे किसी दिन
बधाई दे आने की बात
सोच ही रहा था कि
उसने अपने घर की चारदीवारी
डेढ़ हाथ ऊँची करनी
शुरू कर दी

याद नहीं आता
कब और कहाँ पढ़ा था कि
जब दीवार आदमी से
ऊँची हो जाए तो समझो
आदमी बेहद बौना हो गया है

मासूमियत

मैंने अपनी बाल्कनी के गमले में
वयस्क आँखें बो दीं
वहाँ कोई फूल नहीं निकला
किंतु मेरे घर की सारी निजता
भंग हो गई

मैंने अपनी बाल्कनी के गमले में
वयस्क हाथ बो दिये
वहाँ कोई फूल नहीं निकला
किंतु मेरे घर का सारा सामान
चोरी होने लगा

मैंने अपनी बाल्कनी के गमले में
वयस्क जीभ बो दी
वहाँ कोई फूल नहीं निकला
किंतु मेरे घर की सारी शांति
खो गई

हार कर मैंने अपनी बाल्कनी के गमले में
एक शिशु मन बो दिया

अब वहाँ एक सलोना सूरजमुखी
खिला हुआ है

साठ की उम्र में

साठ की उम्र में लोग
उन रास्तों पर
बेहद आहिस्ता चलते हैं
जहाँ वे दोबारा नहीं लौटेंगे

आइनों में वे
अपने पिता जैसे दिखने लगते हैं
हालाँकि पिता की छवि के पीछे से
कभी-कभी उनके बचपन का चेहरा भी
झाँकने लगता है इस ओर
जिसे वे हसरत भरी निगाहों से
देख लेते हैं

उनके भीतर
कुछ-न-कुछ भरता रहता है
लगातार

जैसे ढलती शाम के वीराने में आती है
झींगुरों की गहरी आवाज़
झाड़ियों-जंगलों को भरती हुई

बचपन

दशकों पहले एक बचपन था
बचपन उल्लसित किलकता हुआ
एक मासूम उपस्थिति
सूरज चाँद और सितारों के नीचे

बचपन चिड़िया का पंख था
बचपन उड़ती-कटती पतंगें थीं
बचपन माँ का आँचल था
बचपन पिता की गोद थी

चिड़ियों के पंख गुम हो गए
सारी पतंगें कट-फट गईं
माँ तारों में जा छिपी
पिता सूर्य में समा गए

अब बचपन एक विलुप्त जीव है
केवल मन के
अजायबघर में बची हैं
जिसकी स्मृतियाँ

एक खो गई उम्र है वह
जब क्षितिज संभावनाओं से भरा था

विस्तार

आकाश मेरे भीतर ही था
एक दिन मेरे मन का पंछी
खुले रोशनदान से उड़ान भर गया

समुद्र मेरे भीतर ही था
एक दिन मेरे मन की मछली
खुली खिड़की से गहराई में उतर गई

पहाड़ मेरे भीतर ही था
एक दिन मेरे मन का पर्वतारोही
खुले द्वार से निकल ऊपर चढ़ गया

बरसों तक मैं दो शब्दों के
बीच की खाली जगह में
दुबका हुआ मौन था
एक दिन जाग कर
मैं कविता से निकला और
जीवन में भर गया !

नीरज कुमार 'नीर'

जन्म- 1973। रांची विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातक करने के उपरांत भारत सरकार के अधीन केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क विभाग में कार्यरत हैं। पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें प्रकाशित।

संपर्क-
शुभ गौरी इन्क्लेव के पीछे, बुद्ध विहार, पो.ऑ. अशोक नगर, रांची, झारखण्ड, पिन- 834002
ईमेल -
neerajcex@gmail.com

आत्मकथ्य

मैं एक संवेदनशील व्यक्ति हूँ और शायद इसीलिए कविता करता हूँ. मेरी कवितायें मेरे जीवन में एवं मेरे आस पास के परिवेश में घट रही घटनाओं का प्रतिबिम्ब है. जो भोगता हूँ उसे व्यक्त करने की कोशिश करता हूँ. मेरा मानना है कि एक कवि का देश, समाज मे घट रही घटनाओं के प्रति सापेक्ष भाव होना चाहिए तथा कविता सार्थक एवं सोद्देश्य होनी चाहिए।

नदी मर गयी

नदी मर गयी,
बहुत तड़पने के बाद
घाव मवादी था
आती है अब महक
अब शहर में गिद्ध नहीं आते
कुत्ते लगाते हैं दौड़
उसकी मृत देह पर
फिर भाग खड़े होते हैं
नदी जवान थी, खूबसूरत
वह थी चिर यौवना
भर देती थी जीवन से
खेलती थी, करती थी अठखेलियाँ,
छूकर कभी इस किनारे को

कभी उस किनारे को
उछालती जल, करती कल्लोल,
भिगोती तट के पीपल को
पुरबाई में पीपल का पेड़
झूम कर करता था अभिषेक
करता अपने प्रिय पातों का अर्पण
प्रेम के भेंट स्वरुप..
दाह से पहले, ठंडे शीतल जल में
जब मृत शरीर को कराते थे स्नान,
आत्मा तृप्त हो उठती थी
चहचहा उठता था घने पीपल पर
बैठा पक्षियों का समूह,
मानो गवाही देता था
स्वर्ग की सीढ़ी के उतरने का
जीवन तभी तक है
जब तक गति है
नदी किनारे रहने वाला हंसों का जोड़ा
उड़ गया
नये ठौर की तलाश में
वहां अब उग आयीं है
कुछ झुग्गियां
जहाँ कुत्ते नहीं रहते
रहते है आदमी
जिन्हें मंजूर होता है
नरक,
दो वक्त की रोटियों के बदले
शहर बड़ा हो गया
और नदी मर गयी !

धामिन, करैत और राजा

जंगल से एक धामिन सांप
भाग कर आ गया है शहर
उसके बिल में
करैतों ने डाला था डेरा
खा गया था उसके अंडे
अब राजा के लोग
उसके बिल में डाल रहे हैं
गरम पानी
पूछते है करैतों का पता
उसे बताते हैं करैतों में से एक
शहर आकर उसने देखा है चकाचौंध
सीख लिया छल
उसके मन में जन्म लेती है
लालसा
वह भी पाना चाहता है
संसाधनों पर अपना हिस्सा
करैतों की तरह
जो जंगल में रहकर
शहर में रखते है आलिशान मकान
बड़ी गाड़ियाँ
अपने बच्चों के लिए
इंग्लिश स्कूल और
अच्छे अस्पताल
वह जंगल वापस जाता है
बन जाता है करैत,
वसूलता है लेवी
घुसता है किसी धामिन के बिल में ..
खाता है उसके अंडे
उसके सर पर
सरकार ने रखा है इनाम
अपने झोले में अब रखता है
नक्सली साहित्य!

सर्दी और गरीबन

कंपकपायी धरती ठंड से
पाषाण से आंसू निकला

सिहर कर आयी चाँदनी
सूरज कम्बल डाल के निकला
कपड़े गर्म पहन कर टॉमी,
हीटर की गरमी में सोया
भूख की चादर ओढ़ गरीबन,
ठिठुरा सारी रात न सोया

सूखे छाती से चिपका नन्हे
थक गया पर दूध ना निकला

पेट सटाकर घुटनों से
गठरी बनकर पड़ा रहा
पात हीन वृक्ष सरीखा
हिले डुले बिन अड़ा रहा

बाहर से कड़े बर्फ सा
भीतर में पानी सा पिघला

सर्द हवा में गीला चाँद,
मुंह चिढ़ाता टेढ़ा चाँद,
माचिस की तिल्ली, बीड़ी का धुंआ,
भूखी आँखों से धुंधला चाँद,

आँखें हुई सफ़ेद,
छुप गया फिर चाँद न निकला

वही जी रहा हूँ

तुमने खीची थी जो
सादे पन्ने पर
आड़ी तिरछी रेखाएं
वही मेरी जिंदगी की
तस्वीर है
वही जी रहा हूँ.

रस भरी के फल
जिसे छोड़ दिया था
तुमने कड़वा कहकर
वही मेरी जिंदगी की
मिठास है .
वही जी रहा हूँ ..

मंजिल पाने की जल्दी में
जिस राह को छोड़ कर
तुमने लिया था शोर्ट कट
वही मेरी जिंदगी की
राह है
वही जी रहा हूँ

तुम हो गये मुझसे दूर
तुम्हे अंक के पहले का शून्य बनना था
मैं तुम्हारा शून्य समेटे हूँ
वही मेरी जिंदगी का
सत्य है
वही जी रहा हूँ।
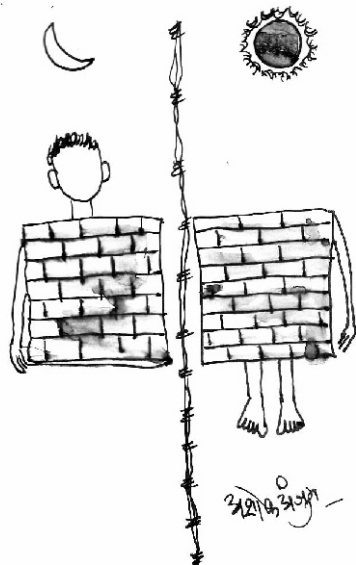
सुशील सिद्धार्थ

जन्म- 1958 भीरा, सीतापुर, उ.प्र.। चर्चित व्यंग्यकार व आलोचक। सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लेख व व्यंग्य प्रकाशित। कई पत्रिकाओं में स्तम्भ लेखन। ज्ञानोदय, कथाक्रम आदि पत्रिकाओं के संपादन से जुड़ाव। मीडिया पर अध्यापन। दूरदर्शन पर कमलेश्वर के साथ धारावाहिक लेखन। 3 व्यंग्य संग्रह व 2 अवधी कविता संग्रह प्रकाशित। इसके अतिरिक्त श्रीलाल शुक्ल संचयिता का डॉ नामवर सिंह के साथ संपादन, हिंदी कहानी का युवा परिदृश्य (3 खंड) का संपादन। लगभग एक दर्जन सम्मानों व पुरस्कारों से समादृत। सम्प्रति- दूसरी परम्परा' साहित्यिक त्रैमासिकी का संपादन।

संपर्क-
537/121, पुरनिया, निकट रेलवे क्रासिंग, अलीगंज, लखनऊ-24
ईमेल -
sushilsiddharth@gmail.com

विदूषक

उस कमरे के तापमान पर पंचमहाभूतों का कोई नियंत्रण नहीं था। उसमें बैठे लोगों के अनुकूल रहने में ही उसकी भलाई थी। कमरे में आते ही देश और काल का बोध दिवंगत हो जाता था। ऐसी जगह प्रखर बैठा था। थोड़ा संशोधन करें तो वहाँ पन्द्रह बीस भद्र, सम्भ्रांत, पूँजीपति, नवाचारी बैठे थे जिनके सामने प्रखर बैठा था। सामने के लोग मदिरापान के मध्यान्तर में थे। चेहरे की त्वचा तनी, आँखें चढ़ी, ज़बान विह्वल और लगभग स्थितप्रज्ञ! प्रखर को आने में थोड़ा विलम्ब हो गया था। पता पूछने और बिल्डिंग में आने के बाद भी खुद को सँभालने में समय लगा। जब द्वारपाल के साथ प्रखर घुसा तो कुशल की साँस में साँस जैसी कोई चीज़ आई, 'आओ आओ! हम सब कब से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं। तुम पर यक़ीन करके हमने आज की शाम किसी और को बुलाया भी नहीं था। शाम बर्बाद हो जाती तो ये बास्टर्ड मुझे तबाह कर डालते!' बास्टर्ड शब्द में इतनी आत्मीयता भरी थी कि सबके चेहरे चमक उठे। प्रखर अपने से कई गुना हैसियत की कुर्सी पर नामाकूल की तरह बैठ गया।

बैठ तो गया, मगर अब उसे असली काम शुरू करना था। तैयारी की कमी और माहौल के हौलनाक असर ने प्रखर को उजबक बना दिया था। वह सोच ही रहा था कि कुछ तो शुरू करूँ कि तभी गंजे सिर वाले ने कहा, 'भाई कुशल ने तुम्हारी बड़ी तारीफ़ की है. . . अब दिखाओ अपना आर्ट।' प्रखर ने घबराकर कुशल की ओर देखा, 'मगर मुझे तो ऐसा कोई लतीफ़ा याद नहीं, मेरे पास ऐसी दिलचस्प बातें नहीं, जिन्हें

सुनाकर मैं आपका मनोरंजन कर सकूँ। मुझे ऐसी कोई कहानी याद नहीं पड़ती जिस पर आपको हँसी आ सके। मैं शायद आज की इस शाम को खराब करने के लिए माफ़ी माँगने की तैयारी कर रहा हूँ।'

कुशल का चेहरा उतरने लगा। एक पतले साहब बोले, 'अरे परेशान मत हो। तुम कुछ भी सुनाओ, हम उसमें हँसने का स्पेस तलाश लेंगे। तुम लोगों को अभी आइडिया ही नहीं है कि हम लोग किन किन बातों पर ठहाके लगाते हैं। हमारे क़हक़हों की हक़ीक़त तुम लोगों को अभी पता कहाँ हैं!' प्रखर का हौसला स्थिर होने लगा और कुछ-कुछ आत्मविश्वास लौटने लगा। उसने विनम्रता से कहा, 'देखिए, आप लगातार मुझे तुम कहे चले जा रहे हैं। मैं जिस कल्चर का हूँ वहाँ आप कहते हैं। लोग लड़ाई करें गालियाँ करें, बलात्कार करें, दलाली करें- कहते आप ही हैं। आप लोग आप कहेंगे तो अच्छा लगेगा।'

भूरी शर्ट वाला उठा, लड़खड़ाया, फिर फ़र्शी सलाम सा करता बोला, 'आपकी. . . !' उसने ऐसी ऐसी गालियाँ देनी शुरू की कि प्रखर के गाललाल हो गए। कमरे में मौजूद लोग अब मूड में आ रहे हैं ऐसा उनके लाल हो चुके चेहरे बता रहे थे। भूरी शर्ट वाले ने एक चुनिन्दा गाली को स्वरबद्ध किया और चुटकियाँ बजाकर डाँडिया से करने लगा। 'आपकी माँ की . . .।' सारे लोगो को राह दिख गई। वे भी चुटकियाँ बजाकर सामूहिक रूप से डाँडिया करने लगे। जल्द ही प्रखर बीच में आ गया। उसको गोल घेरे में लेकर लोग चुटकी बजा रहे थे, गुनगुना रहे थे और खिलखिला रहे थे। कुशल भी उनमें शामिल था। प्रखर कुशल के द्वारा सुझाए गए पार्टटाइम काम में घिर चुका था।

. . .

'तो यह बात हैं' कुशल ने प्रखर की पूरी बात सुनकर इत्मीनान से कहा था। . . . कुशल ने अपनी रिवालविंग चेयर को दाहिने पैर के ज़ोर से नचा दिया। गोल-गोल घूमते हुए वह बच्चों की तरह कहने लगा, 'काम काम काम'। लग नहीं नहा था कि कुशल आपने ऑफिस में है। एक विदेशी कम्पनी का दिल्ली स्थित ऑफिस। 'काम' शब्द जैसे एक बिछड़े दोस्त की तरह उसे मिल गया था। जिसके हाथ पकड़ कर वह नाच रहा था। प्रखर के भीतर समय घूम कर वहाँ पहुँच गया था जहाँ कक्षा आठ के दो विद्यार्थी स्कूल में लगी फिरकनी पर चक्कर खाने का मज़ा लूट रहे थे। दोनों बी. ए. तक साथ पढ़े। कुशल के पिता का ट्रांसफर हो गया। प्रखर लखनऊ विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम. ए. करता रह गया। कुशल की याद आती तो कर भी क्या सकता था। वो ज़माना मोबाइल क्रांति का नहीं था।

यहाँ वहाँ भटकता प्रखर दिल्ली आया। उसे एक प्राइवेट संस्था में काम मिल गया था। सैलरी को गरिमापूर्ण बनाने के लिए उसे 'पैकेज' कहा जाने लगा था। प्रखर और उस जैसे अनगिनत इसी पैकेज में जिन्दा थे। कोई सैलरी के बारे में पूछता तो प्रखर अपना सिद्ध वाक्य दोहराता, 'स्त्री से उसकी आयु और पुरूष से उसकी आमदनी नहीं पूछी जाती।' विद्यार्थी जीवन में प्रखर अपने चुस्त जुमलों के लिए प्रसिद्ध था। लड़कियाँ तारीफ़ करती थीं और लड़के रश्क। धीरे-धीरे सारे 'सुभाषित' किसी खस्ताहाल मकान की दीवारों पर टँगे रंगीन बदरंग चित्रों की तरह झूलते गये। प्रखर जिस संस्था में काम करता था, उससे पूरा नहीं पड़ता। ज़ाहिर है तनाव रहता।

तनाव से भरा और गुस्से से उबलता प्रखर उस दिन आई. टी. ओ. पर खड़ा था। एक ब्लू लाइन बस से उतरा था और दूसरी पकड़ कर लक्ष्मीनगर जाना था। जिस बस से उतरा था उसमें मुर्गों की तरह सवारियाँ भरी थीं। बस से उतरते ही मन किया कि फूट फूट कर रो पड़े। उसके दाहिने घुटने में सूजन थी। जब उसने इसका हवाला देकर छः की जगह सात सवारी एडजस्ट करने की बात कही थी तो एक आदमी ने अजीब सा अश्लील चेहरा बनाकर कहा था कि बैठना है तो बोल. . . बहाने क्यों

बनाता है! यहाँ तो सबका कुछ न कुछ सूजा रहता है, किसी का घुटना. . . किसी की. . . । प्रखर मारे गुस्से के खड़ा ही रहा। इस वक्त उसके भीतर हिचकियाँ जारी थीं, यह बात और है कि उसकी आँखें गीली होकर शहर के सौन्दर्य को बिगाड़ नहीं रही थीं। . . . कि तभी सामने से गुज़रती एक कार रूकी। उसमें से कोई झाँकता लगा। कार का शीशा ऊपर से नीचे लुप्त हुआ और किसी ने कहा, 'अरे प्रखर तू!' प्रखर ने गौर से देखा। यह कुशल था। कुशल का दफ्तर पटपड़गंज की तरफ़ था। किसी विदेशी कम्पनी ने दिल्ली में दलाली के लिए उसे रख छोड़ा था। दफ्तर ज्यादा बड़ा न था, मगर रौब पड़ता था। औपचारिकताएँ खत्म होते ही कुशल ने गम्भीर होकर कहा, 'तुझे याद है, नवीं क्लास में तूने मुझे एक बार थप्पड़ मारा था!' दरवाज़ा बन्द था। सहसा प्रखर डर गया, ऐसा तो नहीं कि कुशल उछल कर उसे एक तमाचा रसीद कर दे। 'तू सीरियस हो गया,' कुशल मुस्कुराया। प्रखर को राहत मिली, 'अबे नहीं साले।' अबे और साले शब्द पर्याप्त सावधानी और सभ्यता से कहे गये थे। दिक्कतों ने सावधानी और सभ्यता के पाठ पढ़ा दिए थे।

प्रखर ने अपनी रामकहानी मुहतसर में सुनाई तो कुशल ने सिर्फ इतना कहा, 'यार, अब सोसाइटी को कुशल की ज़रूरत है, प्रखर की नहीं। खैर् बता मै। क्या कर सकता हूँ तेरे लिए।' प्रखर कॉफी पीने के बाद आश्वस्त हो गया था। उसने कहा कि मुझे कुछ पार्टटाइम काम दिला दो। गरीबी की रेखा की तरह एक रेखा भय की भी होती है। मैं आजकल उसी के नीचे रहता हूँ । इतना सुनते ही कुशल 'काम काम काम' कहता गोलगोल घूमने लगा, कुर्सी पर।

'मिल गया काम' कहते हुए कुशल ने कुर्सी रोक ली। बोला, 'प्रखर आगे का आगे सोचेंगे. . . फिलहाल एक काम फौरन हाथ में है।' प्रखर ने उत्सुकता चेहरे पर एकत्र कर ली तो कुशल ने बताया कि उसका बीस पच्चीस लोगों का एक ग्रुप है। 'आईडीसी'। मतलब 'आई डोन्ट केयर'। ग्रुप के सदस्य अपनी अपनी फील्ड में ऊँचे मक़ाम पर हैं। राजनीतिज्ञ, नौकरशाह, बिजनेसमैन वगैरह। हर वीकएन्ड पर आईडीसी के सदस्य एक खास़ जगह इकटठा होते हैं। खाते–पीते हैं। मनोरंजन के लिए कभी किसी टैरो कार्ड रीडर, कभी लाफ्टर चैलेन्ज के प्रतिभागी, कभी किसी कभी किसी को बुला लेते हैं। वेराइटी का ध्यान रखा जाता है। हैंडसम अमाउन्ट दिया जाता है। एक बार तो गैंग रेप की शिकार दो लड़कियों को बुलाया था। उन्होंने खूब डिटेल से अपने अनुभव सुनाए थे। बहुत एन्जाय किया था मेम्बर्स ने। सब रिलैक्स हो गए थे। हमें एक दूसरे के साथ अपने अनुभव शेयर करने चाहिए। यही तो ग्लोबलाइजेशन है। तुम्हारी कहानी सुनने के बाद ऐसी फील आ रही है कि इसमें एन्जाय करने की काफ़ी सम्भावना है। तुम्हारे दुख इस क़ाबिल हैं कि उन पर ठहाके लगाये जा सकें। सोचो यार, इस नश्वर दुनिया में रखा ही क्या है। तुम्हारी वजह से हमें आनन्द मिलेगा। कितनी बड़ी बात है। और तुम्हें पार्टटाईम जॉब। यह उससे बड़ी बात है। तुमने खुद को प्रूव कर दिया तो हम तुम्हें विदेश भी भेज सकते हैं। आजकल मसखरी में बड़ी सम्भावनाएँ है। . . . यह लो कार्ड इस पते पर टाइम से पहुँच जाना।

. . .

लोग थोड़ा हाँफने लगे तब डाँडिया रूका। सब अपनी जगह बैठ गए। प्रखर भी। कुशल ने इशारा किया। प्रखर ने शुरू किया, 'आप कहें तो मैं बेतरतीब तरीके से कुछ बातें आपके सामने रखता हूँ। आजकल मुझपर शब्दकोश देखने का खब्त सवार है। अभी से कल्चर का मामला उठा तो मैंने एक लेख लिखना चाहा। समलैंगिकता से हटकर शब्द तलाश रहा था तो एक मिला। 'पुंमैथुन'। 'पुंमैथुन' सुनते ही ठहाके लगने लगे। और तो सुनिए। एक और शब्द मिला– 'भगभोजी' । इसका

मतलब होता है कि वह आदमी जो अपनी पत्नी, बेटी, बहन या अन्य को औरों के सामने पेश कर आजीविका चलाता है।' प्रखर हँसी की उम्मीद कर रहा था मगर सब गम्भीर थे। एक ने कहा, 'तुम लोगों की सोच में ही खोट है। तुम सोचते हो कि जो हाई लेबल पर कामयाब हैं वे यही सब करके कामयाब हैं। किसने छापा है यह! बताओ। साले का धन्धा बन्द करवा दूँगा।' सहसा एक बुजुर्गवार पर प्रखर की निगाह पड़ी। वे मामले को हाथ में लेने के लिए कसमसा रहे थे। बाले, 'शान्त! शान्त!! मैंने सर्विस टाइम में कल्चर, लैंग्वेज, लिटरेचर वगैरह को काफ़ी हैन्डल किया है। मैं समझ सकता हूँ। वैसे चिन्ता की कोई बात नहीं। इनके सारे शब्दकोश हमारे अंडकोश के नीचे ही रहते हैं।' अब वाह वाह की आवाज़ें आने लगीं और हँसी की लहर चल पड़ी। कुशल के इशारे पर प्रखर ने भी जाम उठा लिया था। अब वह भी मुस्करा रहा था। बुजुर्ग सज्जन को सब अंकल अंकल कह रहे थे। अंकल ने पूछा, लेकिन तुम्हें यह सब पढ़ने की लत कैसे पड़ी। प्रखर पर सुरूर का पहला छींटा पड़ चुका था। अपने सुरूर की वजह से वे इतना शुद्ध बोलते थे कि एक बार नक्शा नवीस उनके मकान का नक्शा बनाकर लाया तो बोले 'क्या इन आकर्षित रेखाओं का अक्षरशः अनुगमन अनिवार्य है! उन्होंने ही यह लत डलवाई। मैं उनकी खूब सेवा करता था। उनकी पत्नी बहुत सुन्दर थीं। मेरे ऊपर कृपालु थीं। मैंने दोनों की खूब सेवा की। . . . मगर अफ़सोस। काश मुझे अलादीन का चिराग मिल जाता जिसे रगड़-रगड़ कर मैं सारी इच्छाएँ पूरी कर लेता!' अंकल ने अगला जाम उठाया, ग़लत. . . सरासर ग़लत। चिराग मिला था तुम्हें। उसे रगड़ रगड़ कर तुम अपना हर काम करवा सकते थे। विश्वविद्यालय में नियुक्ति कर सकते थे। गुरू की पत्नी ही थीं अलादीन का चिराग़। सुना मेरे चिरागदीन!' अंकल ने छत फाड़ ठहाका लगाया, सब लोग ताली पीट-पीट कर मज़ा ले रहे थे। शोर-ओ-गुल के बीच अंकल ने एक के कन्धे पर हाथ रखा, बेटा डोन्ट माइंड। मैंने तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहा। अब लोग सोफों और कुर्सियों पर उछल रहे थे।

सेवक लोग खाने-पीने का सामान चुकने से पहले ही रख जाते थे। कुशल का चेहरा बता रहा था कि उसने प्रखर को यहाँ बुलाकर कोई ग़लती नहीं की। प्रखर गिलासों को देखकर 'आधा भरा या आधा खाली' की थ्यौरी पर चिन्तन कर रहा था। सोच रहा था कि हे चिन्तकों यह भी सोचो कि जो आधा भरा है वह है क्या! हमारे आधे में संघर्ष ही भरे हैं और खाली में भी यही भरें जाएँगे। प्रखर भीतर यह निःशब्द बोल रहा कि प्रकट रूप में चिल्ला उठा, 'अपना-अपना जीवन है सर! आप लोग मौज़ कर रहे हैं, हम लोग हड्डी पर कबड्डी खेल रहे हैं।' मोटी तोंद वाले ने खुश होकर कहा, 'क्या स्मार्ट डायलाग है पुत्तर।' प्रखर लहरों पर चल रहा था, और ये हड्डियाँ इस मुल्क के आम आदमी की हैं। देखिएगा, इनसे एक दिन वज्र बनेगा और दुष्टों का संहार होगा।' प्रखर के सामने एक मोटी चेन वाला मोबाइल पर बात करते-करते आ खड़ा हुआ। वह कह रहा था, 'कुछ देर होल्ड करना।' फिर प्रखर से मुखातिब हुआ, 'जय लटूरी बाबा की! जो बोल रहे थे फिर से कहना तो।' प्रखर को लगा कि उसके जुमले हिट हैं। रूपक इसके दिल को छू गया है। उसने शब्दों की नोक पलक सुधार सब दोहरा दिया। रूपक पूरा होते होते मोटी चेन वाले का एक थप्पड़ अनुप्रास अलंकार की तरह प्रखर के गाल पर पड़ा। प्रखर धड़ाम से एक ओर गिर गया। चेन वाला अपनी जींस के उभार की ओर संकेत कर दाँत पीस रहा था, 'असली वज्र है ये, समझे मिस्टर आम आदमी।'

अंकल ने किसी तरह प्रखर को उठाया। कुशल प्रखर की पीठ थपथपा रहा था, 'डोन्ट माइन्ड, यह सब हमारे खेल का हिस्सा है। सुर्खरू होता है इन्साँ ठोकरें खाने के बाद।' अंकल ने लोगों की ओर

खास निगाह से देखा। सबने अपनी अपनी जेब से लिफाफे निकालकर मेज़ पर रख दिए। अंकल और कुशल ने भी। अंकल ने लिफाफे उठाकर एक पैकेट में रखे। प्रखर को देते हुए बोले, 'ले लो. . . अरे ले भी लो. . . अरे आप ले भी लीजिए। तुम तो आर्ट ऑफ लाफिंग के मास्टर हो। हम फिर तुम्हें बुलाएँगे। आए तो बस से होंगे जाना टैक्सी में। वर्ना हमारी इन्सल्ट होगी। जब मैं कार में चलते हुए आजू बाजू कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलबिलाते लोग देखता हूँ तो रोना आ जाता है। मन करता है कीड़ों वाली दवाई स्प्रे करता चलूँ और कीड़े-मकोड़े पट-पट गिरते रहें।' द्वारपाल ने प्रखर का हाथ पकड़ लिया था। लोग आपस में बातें कर रहे थे। अंकल कुशल से कह रहे थे, 'यह तो अपनी ही तरह का अनूठा विदूषक निकला। तुम्हारे भी परिचय में कैसे-कैसे लोग भरे पड़े हैं।' प्रखर चल पड़ा। लोगों के ठहाके उस पर नये पूँजीवाद की तरह बरस रहे थे।

दो ग़ज़लें

डॉ. अनिल मिश्र

लखनऊ विश्वविद्यालय के परास्नातक स्वर्ण पदक एवं डॉ वाधवा स्मारक स्वर्ण पदक से सम्मानित डॉ अनिल मिश्र अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित, प्रसारित तथा पुरस्कृत बहुभाषीय कवि, लेखक एवं वक्ता हैं। डॉ. मिश्र ने हिंदी, भोजपुरी तथा अंग्रेजी में कई पुस्तकों का प्रणयन किया है। राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय सम्मान के अतिरिक्त डॉ मिश्र पर सन 2001 में लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ में 'डॉ अनिल मिश्र की साहित्य साधना' विषय पर शोध भी हो चुका है।

संपर्क- 510/133 न्यू हैदराबाद, लखनऊ-226007
ईमेल - dranilkmishra@gmail.com

जज्बों-कशिश की बेखुदी में यूँ उधर रहे
यारों क़यामत हो गयी, पर बेख़बर रहे

किसको सुनाएँ ज़िन्दगी की वे कहानियां
मुस्कान हर एक पल रही औ' चश्म-तर रहे

या रब बनी यूँ ही रहे दीवानगी मिरी
है फ़र्क क्या तू बेख़बर या बाख़बर रहे

मंज़िल उसे मिल जायगी है हौसला अगर
चलना जिसे है आ गया कोई डगर रहे

ख्वाहिश दिली है इश्क में मेरी यही सुनो
मैं मैं रहूँ या ना रहूँ वह वह मगर रहे

महकती संदली यादें हवा के साथ आती हैं
कभी वे मुस्कराती हैं कभी वे गुनगुनाती हैं

वही मिट्टी घरौंदों को बनाने औ' गिराने में
हुई झड़पें, लगी चोटें अभी भी गुदगुदाती हैं

समंदर में कभी अश्कों के जब हम डूबने लगते
वही कश्ती पुरानी काग़ज़ों की आ बचाती हैं

छिले घुटने, सने कीचड़ पहुँचते थे घरों में जब
हमारे ज़ख्म धो हल्दी लिये माँ याद आती हैं

वही बरगद गिरे थे हम अनेकों बार जिस पर से
उसी पर बैठ कुछ बुलबुल हमें अब भी बुलाती हैं

सईद अय्यूब

जन्म- 1 जनवरी, 1978. कुशीनगर (उ.प्र.)
उच्च क्षिक्षा जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से
अमेरिकन इंस्टीट्यूट आफ इंडियन स्टडीज में अध्यापन

संस्थापक, सह-निदेशक S.A. Zabaan Pvt. Ltd

पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन
ई-पताः sayeedayub@gmail.com

निवास - AIIS D-31, डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली 110024

जिन्नात

अच्छे मियाँ ने जब पाँच साल की उम्र से ही अच्छे-अच्छे लक्षण दिखाने शुरू कर दिये, तो उनके बाप परेशान हो गये. माँ-बहन की अच्छी-अच्छी गालियाँ न सिर्फ़ याद थीं बल्कि गाँव के हाफ़ीजी जिस तरह से कुरान की तिलावत करते थे, उसी अंदाज़ में अच्छे मियाँ इन गालियों की तिलावत करने लगे थे. पहला कलमा याद करके नहीं दिया लेकिन 'चोली के पीछे....' इतने लय सुर में गाते थे कि बस सुबहान अल्लाह ! एक दिन तो अपनी माँ रज़िया बी से ही ठुमक-ठुमक कर यही सवाल पूछने लगे और रज़िया बी ने शरमा कर अपना मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया और शाम को अच्छे मियाँ के बाप जब घर आये तो शिकायत कर बैठीं.

'आप को तो कुछ दिखाई देता नहीं. लड़का हाथ से निकला जा रहा है. पढ़ाई-लिखाई के नाम पर कोरा लेकिन दिन भर सिनेमा के गाने...'

बाप ने बेटे को बुलाकर एक थप्पड़ लगाया लेकिन यह थप्पड़ उनको और रज़िया बी को भी लगा क्योंकि अच्छे मियाँ उनके इकलौते बेटे थे और बड़ी मुरादों से मिले थे. अब अच्छे मियाँ की किस्मत. बाप जान को उसी वक़्त से अच्छे मियाँ को सुधारने की फ़िक्र लग गई. शायद वे कुछ दिन और सब्र कर लेते लेकिन सातवाँ साल शुरू होते न होते अच्छे मियाँ के अच्छे कारनामे मशहूर होने लगे और जब पिछले हफ़्ते अपने एक और हम उम्र दोस्त के साथ मिलकर उन्होंने पड़ोसी नूर मियाँ की बकरी का दूध निकालते हुए उसकी थनों में लकड़ी की पतली-पतली सींकियाँ घुसेड़ दीं, जिससे बकरी के थनों में हवा

भर गई और.... लेकिन उनका दोस्त कच्चा था, और जल्द ही पूरे गाँव को अच्छे मियाँ का यह कारनामा पता चल गया और तब उनके बाप ने उनको सुधारने की पूरी योजना बना डाली और हफ़्ते भर के अंदर, अच्छे मियाँ अपने बाप के साथ अपने गाँव से पचास किलोमीटर दूर, एक दूसरे गाँव के नामी मदरसे के एक नामी मौलाना के सामने खड़े थे.

वह मदरसा पाँच-छः फूस की बनी झोंपड़ियों से आरास्ता था. बीच में एक और झोंपड़ी थी, जो मस्जिद का काम देती थी. बाँस की कपच्चियों से बना एक गेट था जिसको बकरियाँ, कुत्ते वग़ैरह आसानी से ठेल कर मदरसे में आते-जाते रहते थे. गेट से अंदर जाते ही, एक थोड़ी बड़ी झोंपड़ी थी जो एक ही साथ आफ़िस भी थी और मदरसे के संचालक मौलाना साहब का कमरा भी. वैसे सब लोग उसे दफ़्तर कहते थे. दफ़्तर के बग़ल में नहाने और वज़ू करने के लिये दो हैंडपंप थे जिनके चारों ओर पक्का चबूतरा बना दिया गया था और उसके पीछे टाट से घेर कर बनाये गये दो इस्तिंजा खाऩे. बड़ी ज़रूरत के लिये मदरसे के लोग बधना लेकर मदरसे के पीछे दूर.दूर तक फैले हुए घने बगीचे की सैर करते थे.

अच्छे मियाँ के बाप ने मौलाना साहब को घर से लाये हुए एक-एक मन चावल और गेंहूँ देते हुए बड़ी अक़ीदत से कहा.

'मौलाना साहबए यही एक लड़का है लेकिन मालूम नहीं किसी की नज़र लगी है या किसी जिन्नात का साया हो गया है. पढ़ने लिखने में मन बिल्कुल नहीं लगता है लेकिन दुनिया भर को दिक करने में इसको बहुत मजा आता है. दिन भर छुट्टा साँड की तरह इधर-उधर डोलता रहता है. कई बार तो मन किया कि बहनचो.....' और अच्छे मियाँ के बाप को अचानक याद आ गया कि वे अपने घर में रजिया बी से बात नहीं कर रहे हैं बल्कि मौलाना साहब से बात कर रहे हैं और वे सकपका कर चुप हो गये.

मौलाना साहब ने एक नज़र अच्छे मियाँ पर डाली और दूसरी नज़र उनके बाप के लाये हुए चावल और गेंहू के बोरों पर डालते हुए बोले.

'आप फ़िक्र मत कीजिए. अच्छा किया जो आप इसको यहाँ ले आये. यहाँ अच्छे अच्छों के जिन्नात उतार दिये जाते हैं. आप आराम से घर जाइये, इंशा अल्लाह ये बहुत जल्दी सुधार दिये जायेंगे. मौलाना ने फिर गर्दन घुमाकर अच्छे मियाँ की तरफ़ देखा. सात साल से कुछ निकलती हुई उम्र, गोरा रंग, मुलायम खदो-खाल़, चमकती हुई आँखे जिनमें अब शरारत की जगह डर ने ले ली थी, पतले-पतले रसीले होंठ, फूले-फूले लाल हो रहे गाल.

मौलाना ने पूछा. 'क्या नाम है'

मौलाना की काली दाढ़ी और रोबदार चेहरा, नमाज़ से बना हुआ माथे पर का निशान और झक्क सफ़ेद लिबास, सर पर कछुए की तरह बैठी हुई टोपी के अलावा और भी बहुत कुछ था जिसने अच्छे मियाँ को अंदर तक डरा दिया. मौलाना की आवाज़ अच्छे मियाँ को कुछ अजीब लगी. गाँव के हाफ़ीजी से कुछ-कुछ मिलती लेकिन ज़्यादा डरावनी. वे घबरा कर अपने बाप की तरफ़ देखने लगे. बाप ने बेटे की नज़र पकड़ ली. मौलाना से बोले.

'मौलाना साहब! शरारत तो यह बहुत करता है लेकिन डरता भी बहुत है. खास़ कर जिन्न-शैतान, भूत-प्रेत से बहुत डरता है, पता नहीं किससे उनके बारे में बहुत सारी कहानियाँ सुन ली है और समझता है कि वे इसके आस-पास ही हैं और मौक़ा मिलते ही और तो और किसी के सामने बोलने में इसको बहुत शर्म आती है.'

मौलाना की आँखों में एक चमक आ गयी. वे मुस्कराते हुए बोले.

देखिए जिन्न वग़ैरह मखलूकें तो बरहक़ हैं. अल्लाह ने इनको पैदा किया है, ठीक जैसे हमको और

आपको पैदा किया है. अगर यह समझता है कि जिन्न, भूत-प्रेत वग़ैरह इसके आस-पास ही हैं तो यह तो ईमान की अलामत है. बड़ा प्यारा बच्चा है, उम्मीद है जल्दी ही आप इसके मुतअल्लिक अच्छी खब़र सुनेंगे.

अच्छे मियाँ के बाप को मौलाना साहब की इतनी गाढ़ी छनी हुई बातें ठीक से समझ में नहीं आयीं, फिर भी वे अपना सर हिलाते रहे. मौलाना ने कुछ और बातों के लिये भी उनका सर हिलवाया जैसे अगले रमज़ान में मदरसे के लिये चंदा देने, कुर्बानी का चमड़ा इसी मदरसे में भेजने और कभी-कभी जब अच्छे मियाँ से मिलने आना हो तो कुछ मन गेंहू. चावल लेते आने के लिये. अच्छे मियाँ के बाप सर हिलाते-हिलाते ही वहाँ से विदा हो गये, हाँ विदा होते वक़्त जब अच्छे मियाँ ने रोना शुरू किया तो उनके हिलते हुये सर के साथ-साथ आँखों में कुछ पानी भी दिखायी देने लगा. वे एक ही साथ दुखी भी थे और सुखी भी.

बाप के जाने के बाद मौलाना ने अच्छे मियाँ को पास बुलाया. अलमारी से निकाल कर दो बिस्कुट खाने को दिया और मुस्करा कर बड़े प्यार से बोले.

'देखो बेटा! तुम्हारे माँ बाप तुमको कितना प्यार करते हैं. वे चाहते हैं कि तुम पढ़-लिख कर एक नेक आदमी बनो और दीन की खिदमत करो. इसी लिये तुमको यहाँ लेकर आये हैं. तो अब तुम्हारी ज़िम्मेदारी है कि खूब़ पढ़-लिख कर माँ-बाप के ख़्वाब पूरे करो. समझे..'

अच्छे मियाँ बिस्कुट का एक टुकड़ा मुँह में डाले, मौलाना के पीछे लगे बाँस के खंबे पर धीरे-धीरे रेंगती हुई छिपकली को देख रहे थे. ऐसा लगता था जैसे छिपकली मौलाना के ऊपर कूदने के लिये आ रही है. अगर यह छिपकली मौलाना के पाजामे में घुस जाये तो अच्छे मियाँ ने सोचा, और यह सोचते ही उनकी आँखों का रंग बदल गया और डर की जगह वही पुरानी चमक ने ले ली. लेकिन वे छिपकली की तरफ़ या मौलाना साहब की तरफ़ देर तक नहीं देख सके और उनकी आँखें अपने-आप ही फ़र्श की तरफ़ जो मदरसे के खुलने के 15 साल बाद भी कच्चा ही था, देखने लगीं और मौलाना साहब, इसको अपनी बात के लिये सहमति समझते हुये आगे थोड़ा गंभीर होकर बोले.

'तो बेटाए जाओ और ईमानदारी से अपना काम करो. जो भी उस्ताद करने को बोलें, उसे पूरी ज़िम्मेदारी से पूरा करो. उस्तादों की जितनी खदि़मत करोगे उतना ही तरक़्क़ी करोगे. इल्म पढ़ने से ज़्यादा उस्तादों की खदि़मत करने से आती है. और सुनो! कोई बदमाशी नहीं होनी चाहिये और ना ही यहाँ से भागने की कोशिश करना, वर्ना..'

मौलाना की इस 'वर्ना' में कुछ था, जिसने अच्छे मियाँ की आँखों के रंग को फिर बदल दिया. रात की नमाज़ और खाने से फ़ारिग़ होने के बाद मौलाना ने अच्छे मियाँ को अपने पास बुलाया और बोले.

'देखो! तुम्हारे वालिद साहब चाहते हैं कि जब तक तुम्हारा दिल यहाँ न लग जाये मैं तुम्हारा खास़ ख़्याल रखूँ. तो अभी तुम मेरे कमरे में ही सोओगे. दो चार दिन में जब तुम्हारा मन यहाँ लग जायेगा, तुम्हें दूसरे कमरे में भेज दिया जायेगा. फिलहाल मैंने तुम्हारे लिये एक चारपाई उधर कोने में डलवा दी है.'

अच्छे मियाँ ने कोने की तरफ़ देखा. वहाँ एक चारपाई रखी थी और चारपाई के ऊपर एक दरी और दरी के ऊपर उनके कपड़ों की गठरी जिसमें एक नई लुंगी और दो नये सिलवाये गये कुर्ते. पाजामें के अलावा, एक अदद क्रोशिये की टोपी और कुछ और सामान थे. कमरे के दूसरे कोने में एक तख्त बिछा था, तख्त के ऊपर मोटा बिस्तर, साफ़ तकिये और चारों कोने में लगे बाँस के सहारे टँगी मच्छर-दानी. ज़ाहिर सी बात है, यह मौलाना साहब का बिस्तर था. अच्छे मियाँ का शरारती दिमाग कुलबुलाया. अगर मौलाना साहब के सोने

के बाद, मैं कुछ मच्छर पकड़ कर उनकी मच्छर-दानी में डाल दूँ, तो... अभी उनके दिमाग़ की कुलबुलाहट कुछ तेज़ होनी शुरू ही हुई थी कि मौलाना की आवाज़ ने उस पर ब्रेक लगा दिये.

जाओं अपने कपड़े बदल कर, दुआ पढ़ कर सो जाओ. और सुनो, मुझे सुबह देर से उठने वाले लड़के पसंद नहीं हैं. सुबह, नमाज़ के बाद ही सबक़ शुरु हो जायेगा, इसलिये जल्दी उठकर तैयार हो जाना.

यह कहकर मौलाना ने अपनी आँखें बन्द कर लीं. कुछ देर तक उनका हाथ तस्बीह से उलझा रहा. अच्छे मियाँ ने अपनी चारपाई पर जाकर, अपना पाजामा उतार कर, घर से लायी हुई नई लुंगी पहन ली. लुंगी पहनते वक़्त, उनको घर की बहुत याद आयी, और उनकी आँखों में पानी आ गया. घर पर क्या मज़े से चड्डी पहने ही सो जाते थे. पाजामा तक तो ग़नीमत था, लेकिन यह नामुराद लुंगी. पहनते हुए दो बार गिरते गिरते बचे. किसी तरह सँभाल कर उसको लपेटा और पाजामे का नाड़ा खोलकर उसको नीचे सरका दिया. लेकिन हाय री लुंगी ! वह ऊपर से खुल गयी. अब ना पाजामे को सँभाले बनता है, ना लुंगी को. क़रीब-क़रीब नंगा हो चुके थे. ग़नीमत थी कि मौलाना अपनी तस्बीह में डूबे हुये थे. अच्छे मियाँ ने पाजामे को नीचे गिर जाने दिया और जल्दी से दोनों हाथों से पकड़ कर लुंगी को किसी तरह सँभाल कर बाँधने में कामयाब हो गये. लेकिन अभी भी उनको डर लग रहा था कि लुंगी किसी भी वक़्त खुल सकती थी. मौलाना ने अपनी आँखें खोली और इशारे से अच्छे मियाँ को अपने पास बुलाया. उनके ऊपर तीन बार फूँक कर और उतनी ही बार थूक गिराते हुए जब मौलाना बोले, तो उनकी आवाज़ अजीब सी थी, जैसे कि नींद में बोल रहे हों, एक फुसफुसाहट जैसी.

सुनो ! मैंने तुम्हारे ऊपर दम कर दिया है. तुम भी सब दुआएँ पढ़ कर सोना. तुम्हारे अब्बा बता रहे थे कि तुम जिन्नातों से बहुत डरते हो. तो मैं तुम्हें बता दूँ कि कभी-कभी जिन्नात यहाँ आते हैं. इस कमरे में. मैंने उनको कई बार देखा है. तुम अगर उनको देखना, तो बिल्कुल घबराना मत. मैंने तुम्हारे ऊपर दम कर दिया है वे तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेंगे. लेकिन हाँ, वे जो कुछ भी करते हों, चुपचाप उनको करने देना. बीच में मत बोलना, वर्ना वे नाराज़ हो जायेंगे और फिर मेरी दुआएँ भी काम नहीं करेंगी, और बाद में किसी को बताना भी मत. और सुनों, वे किसी भी शक्ल में आ सकते हैं, तुम्हारी अपनी शक्ल में भी और मेरी शक्ल में भी. तो अगर वे किसी जान-पहचान वाले की शक्ल में आयें तो उनको देखकर पुकारना मत. चुपचाप, वे जो भी करते हैं उनको करने देना. ठीक है

जिन्नात का नाम सुनते ही अच्छे मियाँ की हालत ख़राब होने लगी. मौलाना के ठीक है के जवाब में उन्होंने जल्दी-जल्दी अपना सर हिलाया और अपनी चारपाई के ऊपर बिछी दरी पर जाकर लेट गये. डर के मारे बुरा हाल था. लगता था जिन्नात अब आया कि तब. अरबी में तो कोई दुआ याद नहीं कर पाये थे, इसलिये मन ही मन अपनी ज़ुबान में अल्लाह को याद करके जिन्नातों से बचाने कि दुआ माँगी लेकिन अजीब बात थी कि जितनी बार भी उन्होंने अल्लाह को याद करने की कोशिश की, हर बार उन्हें अपनी माँ का चेहरा याद आया. दुआ ख़त्म करने के बाद उन्होंने कनखियों से मौलाना की तरफ़ देखा. मौलाना अपनी तस्बीह में अभी भी डूबे हुये थे. तस्बीह के दानों के साथ-साथ मौलाना की हिलती हुई दाढ़ी ने उनके रोबदार चेहरे को कुछ और रोबदार बना दिया था. मौलाना को देखते ही अच्छे मियाँ के दिल में ख्याल पैदा हुआ. इत्ते बड़े मौलाना के सामने जिन्नात कैसे आ सकता है. अगर आयेगा तो मौलाना उसे पकड़ कर बोतल में बंद कर देंगे जैसे गाँव वाले हाफ़ीजी ने नजमुन ख़ाला पर आने वाले जिन्नात को पकड़ कर बोतल में बंद कर दिया था.

यह ख्याल आते ही अच्छे मियाँ का डर गायब हो

गया और वे फिर से मौलाना की मच्छर-दानी में मच्छरों को घुसाने की योजना बनाने लगे. उन्हें ये योजना बनाने में बहुत मज़ा आ रहा था. उनके दिमाग़ में कई योजनाएँ आईं और चली गयीं और इसी तरह योजनाएँ बनाते-बिगाड़ते ना जाने कब वे गहरी नींद में सो गये.

गहरी नींद में सो रहे अच्छे मियाँ को लगा कि किसी ने उनकी लुंगी खोल कर नीचे सरका दी है. कुछ देर तक वे इसे एक ख्वाब समझते रहे लेकिन जब उन्होंने अपनी रानों पर किसी के हाथ को सरकते हुए महसूस किया तो वे पूरी तरह जाग गये और जागते ही उनको मौलाना की बातें याद आ गईं कि कभी-कभी जिन्नात इस कमरे में भी आते हैं. डर के मारे उनकी घिघ्घी बँध गई. एक पल के लिये ख्याल आया कि मौलाना को आवाज़ देकर बुलाएँ लेकिन दूसरे ही पल मौलाना की दूसरी बात उन्हें याद आ गयी कि जिन्नात जो भी करें, चुपचाप उनको करने देना, शोर मत मचाना. यह बात याद आते ही उन्होंने अपनी साँस रोक ली और मन ही मन अल्लाह को याद करने लगे. कुछ देर बाद उन्होंने महसूस किया कि अब हाथ के बजाए कोई और चीज़ उनकी रानों पर फिसल रही थी और धीरे-धीरे उनकी दोनों जाँघों से होते हुए ऊपर की ओर बढ़ रही थी. अचानक, उनको मौलाना की दूसरी बात याद आई कि जिन्नात अक्सर किसी की शक्ल में आते हैं. यह याद आते ही उन्होंने सोचा कि ठीक है, मैं कुछ बोलूँगा नहीं, लेकिन मुझे एक बार देखना चाहिये कि यह जिन्नात किस की शक्ल में है. यह सोचते ही उन्होंने अपनी सारी हिम्मत इकट्ठा की, धीरे से अपना सर पीछे की ओर घुमाया और अपनी आँखों को थोड़ा सा खोल दिया. जिन्नात मौलाना की शक्ल में था लेकिन पूरा नंगा.

अनुपमा श्रीवास्तव 'ऋतु'

युवा लेखिका एवं पत्रकार

संपर्क-
'मातृछाया' सी-124, राधापुरम, बिरला मंदिर के पास, वृन्दावन मार्ग, मथुरा, उ.प्र.
ईमेल -
anupamartu@gmail.com

बड़ा आदमी

बरसात में यमुना पूरे उफान पर होती है। घाटों की सीढ़ियाँ पानी की हरी चादर तले पूरी की पूरी छिप जातीं हैं। जैसे-जैसे पानी बढ़ता है, किनारों पर यहाँ-वहां छिटके खड़े ऐतिहासिक ध्वस्तावशेषों को छूने लगता है, इतने गहराई के साथ के उतरकर और सूखकर भी अपने गहरे निशान छोड़ जाता है।

बचपन से मैं ये देखता रहा हूँ। तीव्र उद्घोष करती लहरें रह रह कर उठतीं हैं। दूर तक रेत को भिगोती चली जातीं हैं और जब वापस लौटती हैं तो रेत के सीने पर कुछ सौगात छोड़ जातीं हैं। मुरझाये हुए फूल और पत्ते। दोने, दीये, सीपियाँ, मछलियाँ, घोंघे, कछुए और हाँ...अक्सर सिक्के भी। जैसे ही लहरें रेत को छूकर लौटती हैं, काई पर सधी दौड़ के साथ बच्चों की बाढ़ सी उफन पड़ती है। सिक्का पाने की होड़ में धक्का-मुक्की, मारा-मारी, छीना-झपटी और गाली-गलौज से आस-पास की धरती सिहरने लगती है। जिस बच्चे के हाथ सिक्का लगता है, वो किसी राजा की तरह गर्व से फूलजाता है। बाकी उदास हो जाते हैं। लेकिन निराश नहीं होते। लहरों पे बिना रुके दौड़ते ही रहते हैं। जो तैरना जानते हैं, वो उफनती नदी के बीच से भी सिक्का ले आते हैं। बाहर से आने वाले यात्री इसे बच्चों का खेल और आनंद समझकर उत्फुल्लित हो जातें हैं। लेकिन क्या सचमुच जिंदगी का हर खेल केवल आनंद के लिए होता है ?...

घर में चार लोग थे। माँ, बाबा, गोपाला और मैं। बाबा दिहाड़ी पर मजदूरी करते। साठ रुपये रोज़। कभी काम लगता, कभी नहीं। घर का खर्चा जैसे-तैसे चलता। मेरे स्कूल के पास एक परचून की दूकान थी। क़र्ज़ के मर्तबान में सजी रंग-बिरंगी चीज़ें मुझे ललचा देतीं। मैं अक्सर घर आकर माँ से ज़िद करता। कभी रोता। कभी रूठता। एकाध बार ज़िद पूरी हो जाती। धोती के छोर से चवन्नी निकालकर माँ मेरी हथेली पर रख देती। मैं

एक पल में रंक से राजा हो जाता। मुट्ठी में बंद चवन्नी मेरे लिए दुनिया की सबसे बड़ी पूँजी बन जाती। लेकिन एक दिन अचानक ही यमुना की इन्हीं लहरों के बीच मेरी छोटी-छोटी कामनाओं को आत्मनिर्भर होने का ये रास्ता मिल गया। मेरे साथ पढ़ने वाले मेरे ही जैसे कुछ लड़के श्रद्धालुओं द्वारा फेंके गये सिक्के तलाशने आते थे। मैं न जाने कब उनकी टोली में शामिल हो गया। स्कूल से लौटते ही बस्ता फेंककर मैं सीधा यहीं चला आता। यात्री रोज़-रोज़ नहीं आते थे। सिक्का भी रोज़-रोज़ नहीं मिलता था। लेकिन जब भी मिलता था तो मन जाने कैसे आनंद से भर जाता। मैं कभी बुढ़िया के बाल खरीदता। कभी मीठी रंगीन गोलियां। कभी इनाम वाला लेमनजूस. कभी रेवड़ी। कभी मूंगफली, तो कभी रमास की चाट।

सावन के मौसम में अच्छी कमाई होती। खूब यात्री आते। कोई चुनरी चढ़ाने, कोई मनौती मांगने। कोई नहाकर पुण्य कमाने, तो कोई ऐसे ही सैर करने या नन्हा सा सिक्का उछालकर हमारी कलाबाजियां देखने...बड़ी बड़ी मनोकामनाओं के लिए छोटे-छोटे सिक्के बारिश की बूंदों से रह-रह कर टपकते। पता नहीं यमुना मईया उनकी मनोकामनाएं पूरी करतीं थीं या नहीं ?

अब मैं जितने भी सिक्के इकट्ठे करता, जाकर माँ के हाथ पर रख देता। माँ की ख़ुशी छलक पड़ती। आंचल के उसी छोर में बांधकर माथे से लगा लेती। बापू लौटते तो गर्व से उन्हें बताती। बापू पहले मुस्कराकर शाबासी देते फिर अगले ही पल डांटते- 'जिन सिक्कन के चक्कर में पढ़ाई कूं मत भूलियो लाला, नई तौ बडों आदमी कैसे बनैगो ?'

बाबा मुझे बड़ा आदमी बनाना चाहते थे। 'बड़ा आदमी'... तब मुझे नहीं मालूम था कि बड़ा आदमी क्या होता है ? कैसा होता है ? फिर भी बाबा का सपना थामकर मैं बड़ा होने लगा। बड़ा आदमी बनने के लिए बड़ा होने लगा। दोस्तों से बस इतना जान पाया था कि बड़ा आदमी छोटी चीज़ों की परवाह नहीं करता। शायद इसीलिए यमुना के छोर से मिलने वाले सिक्कों का मोह छूटने लगा। लेकिन मेरी जगह अब गोपाला था, जो उसी राह पर दौड़ने लगा था। मेरा दस बरस का नन्हा-मुन्ना भईया... मेरी तरह अचानक वो भी कमाऊ हो गया। मैं एक दिन में कभी पांच-छह से ज्यादा रुपए नहीं ला पाया था लेकिन गोपाला पहले ही दिन पूरे उन्नीस रूपए के सिक्के खनकाता लौटा था। प्रसन्नता के अतिरेक में चेहरा ऐसे चमक रहा था मानो विश्वविजय करके लौटा हो। सीना फुलाए। गर्व से भरे महानायक की तरह। हांफता हुआ, हँसता हुआ। उसकी इस अप्रत्याशित कमाई पर मुझे विश्वास नहीं हो पाया। मुझे लगा कि कहीं गोपाला ने... ! मेरे ही जैसी आशंका में माँ ने भी खुश होने के बजाय उसके गुदगुदे गाल पर अपनी उँगलियाँ उभार दीं। बाबा से भी फटकार लगवाई। गोपाला सिर झुकाए खड़ा रहा। सूखे पत्ते सा कांपता रहा। रात होते-होते उसे तेज बुखार चढ़ आया। बाबा दवा लेने गए थे। माँ सिर पर ठंडे पानी की पट्टियाँ रख रही थी। मैं सिराहने बैठा था। तब मेरा हाथ पकड़कर गोपाला बोला, 'मैंने चोरी नाय करी, भइया। जाके भोला ते पूछ लै। मैंने जे सिक्का खुद कमाए। मेरौ बस्ता खोलकै देख भइया। बामें एक मशीन धरी यै। बाई ते...'

मशीन.... मैं हैरान था। अगले ही पल गोपाला की बनाई 'मशीन' मेरे हाथ में थी। एक लम्बी मजबूत डोरी में बंधा चुम्बक का एक टूटा टुकड़ा। पतंगबाजों की भाषा में जिसे 'लंगड़' कहा जा सकता था। मेरी आँखों से आंसू छलक पड़ना चाहते थे। 'तूने यह बताया क्यों नहीं गोपाला ?...'

-'काऊ ने पूछोई कहाँ ? कल तुमने पतंग के ताईं दो रुपइया दिए हते। बिन तेई मैंने जे टूटो चुम्मक खरीदौ। कबाड़ी ते।' उसने बताया, 'भइया तुम एक-एक सिक्के के लिए कितनी मेहनत करते थे ! तब मैं सोचता था कि कोई ऐसी चीज़ बनाई जाये जिससे सिक्के खुद ही चिपकते चले आएं। मेरी

मशीन ठीक यही काम करती है भइया। भोला के साथ उसके बाबा की नाव में बैठकर मैं इसे पानी में गोल-गोल घुमाता रहा। परदेशी सिक्के फेंकते रहे और मेरी मशीन पानी के भीतर से सिक्के ढूंढ-ढूंढकर लाती रही।'

अजीब था गोपाला भी। छोटा होकर भी कितना बड़ा ! मुझे अचरज़ होता। दुकान की मायावी चीज़ों का आकर्षण उसमें क्यों नहीं था ? स्कूल के बाद गृहकार्य ख़त्म करते ही वो अपनी मशीन उठाकर चल देता। और कुछ ही घंटे बाद जब वापस लौटता तो जेब में खनकते सिक्के दूर से ही उसके आने की घोषणा कर देते। एक दिन गोपाला मिट्टी की गुल्लक खरीद लाया। जितने सिक्के कमाता, सारे के सारे उसे सौप देता। मैं पूछता गोपाला इत्ते सिक्के जोड़कर तू क्या करेगा ? गोपाला कहता बड़ा आदमी बनूँगा। भइया और जब हम दोनों बड़े आदमी बन जाएंगे तो बाबा को मजूरी के लिए नहीं जाने देंगे। अच्छा सा घर बनवायेंगे जिसमें ढेर सारे फूल होंगे और टी.वी. भी। 'फिर हम सब मिलकर फिलिम देखा करेंगे।'

'बड़ा आदमी !' इसे भी रोग लग गया। गोपाला खुली आँखों से सपने देखता जाता और मैं गोपाला को। गाँव में स्कूल दसवीं तक ही था। जब अच्छे नम्बरों से मैंने प्रथम श्रेणी में दसवीं पास की तो बाबा ख़ुशी के मारे दिनभर की कमाई से मिठाई खरीदकर बांटते फिरे। और गोपाला.... नदी से सिक्के ढूंढकर लाने वाला मेरा नन्हा भइया उस दिन औरों की देखा देखी पहली बार एक सिक्का नदी को अर्पित करके आया था। अब वो भी जल्द से जल्द मुझे बड़े आदमी के रूप में देखना चाहता था।

नंबरों की वजह से एडमिशन तुरंत हो गया। किताबें बुक बैंक से मिल गयीं और फीस का प्रबंध भी जैसे -तैसे खींच-तान कर हो गया। पर अब भी एक समस्या थी। कॉलेज मथुरा में था। मेरे गाँव लखमीपुर से सात-आठ किमी मुझे आने जाने के लिए साइकिल की ज़रूरत थी। ज़िद पकड़कर रोने-रूठने वाली उम्र पीछे छोड़ आया था। जानता था बाबा जितना कर सकते थे उससे अधिक कर चुके थे। कॉलेज आते-जाते हुए पैदल चलते जब थकान होने लगती तो मैं किसी ऑटो के पीछे लटक जाता।

मगर कहते हैं कि चाह के साथ राह खुद ही पैदा हो जाती है। मेरा एक दोस्त बसों में छोटी-मोटी कंपनियों के सामान बेचता था। उसकी आत्मनिर्भरता मेरी प्रेरणा बनी। कॉलेज के बाद मैं भी यही काम करने लगा। कभी दन्त चमकाऊ मंजन, कभी सिरदर्द का बाम, कभी अकबर-बीरबल के किस्से तो कभी नकली जेवर।' .... सोने से कम नहीं खो जाए तो गम नहीं।' किसी दिन जमकर बिक्री होती तो कभी पूरा हफ़्ता सूखा जाता। खैर ! साइकिलके लिए पैसे इकट्ठे होने लगे। मैं और गोपाला मिलकर जब पैसों की गिनती करते तो हमारी कल्पना में एक नई-नवेली साइकिल की छवि झिलमिला उठती। तीन महीने होने को थे और मैं अब तक केवल आठ सौ बीस रूपए ही जोड़ पाया था। अब समझ आने लगा था कि बूंद बूंद से घट भर तो जाता है लेकिन अपनी प्यास में भी उतना ही धैर्य होना चाहिए... और धैर्य मेरा साथ छोड़ रहा था। घर से कॉलेज और कॉलेज से घर तक की भागमभाग पीने का धैर्य। बसों में चढ़कर सवारियों की ठेल-पेल जीने का धैर्य। खुशामद के बावजूद कंडक्टर की झिड़क सहने का धैर्य। लोगों की उपहास भरी नज़रों को नज़र अंदाज़ करने का धैर्य। और इस सबके बावजूद बड़ा आदमी बनने का सपना देखते रहने का धैय...

मैं ऊबने लगा था। आदमी जीने के लिए कमाता है लेकिन मैं कमाने के लिए जी रहा था। पढ़ाई छूट रही थी। इम्तिहान के दो महीने बाकी थे। मैं त्रिशंकु सा बीच में लटक गया था। पढ़ने बैठता तो जाने क्या-क्या सोचने लगता। उस दिन मैं बहुत उदास था। मेरे साथ घर का कोना-कोना भी जैसे उदास

हो गया। कैसे न होता ? माँ-बाबा के साथ गोपाला भी तो मेरी उदासी पढ़ना सीख गया था। मैं पढ़ने की कोशिश कर रहा था या सच कहूँ तो किताब में मुंह छिपाए बैठा था। तभी गोपाला मेरे क़रीब आया। 'भइया...' मैंने उसकी आवाज़ को जैसे सुनकर भी नहीं सुना। किताब मुंह पर चिपकाए वैसे ही बैठा रहा। उसने फिर कुछ कहना चाहा पर मैंने बिना देखे ही उसे झिड़क दिया। बजाय दूर जाने के वो मेरे करीब आकर बैठ गया- तुम साइकिल लेना चाहते हो ना भइया। दयाराम मास्टर जी अपनी साइकिल बेच रहे हैं। पुरानी है, पर ठीक-ठाक है। थोड़ी ठोक-पीट कर एकदम चकाचक हो जाएगी।

उत्साह में किताब फेंककर मैं गोपाला के साथ अपने गिने-गिनाए रुपयों को फिर से गिनने बैठ गया। रूपए उतने ही रहे जितने थे। मैं किताब के साथ उछलकर बिखर गई अपनी उदासी को फिर से समेटने लगा। गोपाला माथे पर हाथ रखकर मेरे पास कुछ देर यूँ ही बैठा रहा। 'जे तौ कुल आठ सौ बीस रहे भईया। इत्ते में तौ मास्साब तैयार ना हुंगे। कह रए हज़ार से कम में नाय बेचिंगे। लेकिन, लेकिन...'

जाने क्या सोचकर गोपाला की आँखें चमक से भर गईं। बात पूरी किए बिना ही वो दौड़ गया। अगले ही पलएक हल्की सी आवाज़ ने मुझे उठने पर विवश कर दिया। बाहर आया तो देखा, गोपाला धरती में पाँव फैलाए बैठा था। पास ही उसके अरमानों की गुल्लक टुकड़े-टुकड़े हुई पड़ी थी। भीतर का सारा तिलस्म खन-खन छन छन करता हुआ बिखरता जा रहा था। गोपाला गिनती करता रहा। फिर सारे खजाने को कमीज़ में समेटकर मेरे पास आकर बोला, 'भईया अब हमें कुल सत्तर रुपइए और चाहिएं। जे देख पूरे एक सौ दस।' गोपाला सारे सिक्के मेरी झोली में डालकर अपनी मशीन घुमाता हुआ बाहर दौड़ गया। 'बस्स मैं गयौ और आयौ...' मैंने उसे रोकना चाहा। कुछ कहना चाहा, पर उसके बड़प्पन के बोझ को संभालता स्नेह अभिभूत सा मैं बस दरवाजे के सहारे खड़ा रह गया।

वो सितम्बर का महीना था। इस महीने में यमुना के घाट देर रात तक चहल-पहल से गूंजते रहते हैं। परदेशी ही नहीं, स्थानीय बृजवासी भी पितरों को श्रद्धा अर्पण करने के लिए दूर-पास से आते रहते हैं। अगरबत्तियों की महक से सारा वातावरण गमकता है। दोनों ओर पत्तलों में न जाने क्या-क्या रखकर यमुना में चढ़ाया जाता है। पण्डे-पुजारियों की तो मौज आ जाती है। चकाचक खाने के साथ माल पानी भी खूब मिलता है। बच्चे भी अपने मतलब के सामान पर झपटते रहते हैं। चढ़ावे के दोनों के साथ खुद भी दूर तक बहते चले जाते हैं। चाँदी के कारोबारी बड़े-बड़े सेठ चाँदी के सिक्के भी दिल खोल कर चढ़ाते हैं। पर चाँदी का सिक्का किसी भाग्यवान को ही मिलता है। गोपाला उस दिन जब घर आया तो उसकी मुट्ठी में भी एक चाँदी का सिक्का था।

एक बार फिर मैं हैरान रह गया। उसकी मशीन में चाँदी का सिक्का नहीं चिपक सकता था। वो अच्छी तरह तैरना भी नहीं जानता था, लेकिन इतनी बड़ी जीत के बावजूद उसके चेहरे पर उत्साह या उत्तेजना जैसा कोई भाव नहीं था। किसी बड़े आदमी की ही तरह वो इतना शांत और निर्विकार था मानो इन सब चीज़ों से बहुत ऊपर उठ गया हो। वो मुंह से कुछ बोला भी नहीं। एक शब्द भी नहीं... मैंने खुद ही उसकी बंद मुट्ठी खोलकर देखी। गुदगुदी हथेली में कैद चाँदी का चमचमाता सिक्का !...

मैं चीख पड़ा। नहीं, उत्साह या आनंद से नहीं। वेदना से। माँ पागलों की तरह सिर पटक-पटककर रो रही थी। यही हाल बाबा का था। गोपाला लौटकर भी कहाँ लौटा था। आँखें जिसे देख रहीं थीं वो उसकी मिट्टी भर थी। मेरा गोपाला मेरे लिए सिक्का खोजते-खोजते खुद ही खो गया था। यमुना की लहरों के तेज बहाव को जीतना कहाँ

जानता था मेरा विजेता! उसकी मशीन पानी से भरे उसके फूले हुए शरीर पर यों लिपटी हुई थी मानो वो भी बच्चा न होकर कोई सिक्का हो। कलेंडर की तारीखें बदलतीं गईं। पर न यमुना बदली और न सिक्कों का ये खेल। सिक्के... हाँ, मुझे कुछ याद आया। मैं अपना सूटकेस खोलता हूँ। वजनदार पोटली को बाहर निकालता हूँ। लहरों के बीच जाकर सिक्के उछालने लगता हूँ। एक-एक चेहरे को गौर से देखता हूँ। इनमें से कोई भी गोपाला नहीं है। लेकिन नहीं... ये सारे के सारे गोपाला ही तो हैं। धक्का-मुक्की में मेरी पैन्ट की क्रीज़ छिटक गयी है। लेकिन इसे अनदेखा करके खाली पोटली वहीं फेंककर मैं लौट पड़ा हूँ। आखिर बड़ा आदमी होकर छोटी बातों की परवाह मैं कर भी सकता हूँ!!

दो ग़ज़लें

संजु शब्दिता

जन्म-15 अगस्त

शिक्षा- एम.ए.(हिंदी साहित्य),नेट जे.आर.एफ.

प्रकाशन- विविध पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित

संपर्क- 749, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006, उ.प्र.

ईमेल - sanjushabdita@gmail.com

बेकली मेरे दिल की मिटा दीजिए
ऐ मेरे चारागर कुछ दवा दीजिए

कुछ तो जज्बात मेरे समझिए जरा
कुछ तो मेरी वफ़ा का सिला दीजिए

दिलधुआं है मगर शोले जलते नही
इन शरारों को थोड़ी हवा दीजिए

बस तिज़ारत जहाँ पर नसीबों का हो
इक वहीं से मुकद्दर दिला दीजिए

नींद आई थी जब इक जमाना हुआ
उम्र भर के लिए अब सुला दीजिए

दम घुटा है बहुत सोने की कैद में
मेरी माटी से मुझको मिला दीजिए

हँसते मौसम यूँ ही आते जाते रहे
ग़म के मौसम में हम मुस्कुराते रहे

यादें परछाइयाँ बन गयीं आजकल
हमसफ़र हम उन्हें ही बताते रहे

कल तेरा नाम आया था होंठों पे यूँ
जैसे हम गैर पर हक़ जताते रहे

दिल के ज़ख्मों को वो सिल तो देता मगर
हम ही थे जो उसे आजमाते रहे

तल्ख़ बातें ही अब बन गयीं रहनुमाँ
मीठे किस्से हमें बस रुलाते रहे

चल दिये हैं सफ़र में अकेले ही हम
साथ अपने ग़मों को बुलाते रहे

स्वाति तिवारी

संपर्क-
EN1/9 चार इमली, आई.ए.एस. गेस्ट हाउस के सामने, भोपाल-462016 (म.प्र.)
ईमेल - stswatitiwari@gmail.com

बाल अभिव्यक्ति के पन्नों से

कई बार हम बच्चों के व्यक्तित्व को उनके नजरिए को सिर्फ यह सोच कर खारिज कर देते हैं कि वह अभी बच्चा है, उसको क्या समझेगा? पर ऐसा नहीं है कई बातों में बच्चे बड़ों से भी बेहतर दृष्टिकोण दे सकते हैं और बहुत ही सूक्ष्मता से समस्या की गम्भीरता का अवलोकन करते हैं। समर्थन एक स्वयं सेवी संस्था है जो बच्चों के साथ काम करती है। बाल अभिव्यक्ति के सम्पादक पत्रकार राजू कुमार ने एक दिन इसी संस्था के बारे में बताया। राजू कुमार ने बताया कि मध्यप्रदेश सीहोर जिले में 'सेव द चिल्ड्रन एवं वाटर एड' के सहयोग से सीहोर विकासखण्ड के 15 ग्राम पंचायतों के 22 गाँवों में बाल स्वच्छता कार्यक्रम चलाते हुए संस्था समर्थन ने महसूस किया कि बच्चों में अपने आसपास की घटनाओं और समस्याओं के साथ-साथ सकारात्मक पहल को बेहतर तरीके से देखने समझने और उसे व्यक्त करने की भरपूर क्षमता है। समर्थन ने बाल-पत्रकारिता के माध्यम से बच्चों की इस रचनात्मक प्रतिभा को व्यापक समाज के सामने लाने का निर्णय लिया।

बाल स्वच्छता कार्यक्रम को लक्ष्य करते हुए संस्था ने शुद्ध पानी, सफाई, स्वच्छता के प्रति बच्चों में जागरुकता लाने के उद्देश्य से बाल पत्रकारिता प्रशिक्षण जैसा बेहद रोचक और महत्वपूर्ण रचनात्मक आयोजन किया। बच्चों ने अपने अनुभवों को साझा करते हुए प्रशिक्षण की एक नई मिसाल रख दी। इस आयोजन में बच्चों ने समाचार के साथ-साथ कई बेहतरीन कहानियाँ भी लिखीं। यथार्थ की घटनाओं को अपनी कल्पना शक्ति के सहारे कहानी के रूप में अभिव्यक्त करने की उनकी कला पाठकों को अभिभूत कर देगी। इन बच्चों में अच्छे पत्रकार और अच्छे लेखक होने की सम्भावनाओं को देखते हुए हम उनका लेखन साझा कर रहे हैं :-

पहली बार मन से लिखी कहानी

नाम : मयंक त्यागी (कक्षा : 9वीं लसूड़िया परिहार)

जब मैं पहले दिन आया था, तो मुझे बहुत डर लगा। मैंने सोचा कि क्या पता क्या करना पड़ेगा? लेकिन जब मैं 1 घंटे बैठा, तो उतने में ही मेरा डर खत्म हो गया। मैंने पहली बार समाचार लिखा था, पर अच्छा लगा। हम सबने बहुत मस्ती की और समाचार लिखे, चित्र बनाए। मैंने पहली बार अपने मन से कहानी लिखी थी

और अच्छी लिखी। एक ऐसा विषय जो मुझे कभी अच्छा नहीं लगा– पर अक्सर मैंने भेदभाव देखा– क्या भेदभाव मिट नहीं सकता।

कहानी – दलित के साथ भेदभाव

गांव में एक बहुत ही गरीब बूढ़े बाबा थे। उनका नाम लखन बाबा था। वह मांसाहारी थे, लेकिन भगवान की पूजा–पाठ भी किया करते थे। रामनवमी के दिन मंदिर में प्रसाद वितरण किया जा रहा था। प्रसाद लेने के लिए लखन बाबा मंदिर के अंदर चले गए। जैसे ही बाबा मंदिर के अंदर गए, वैसे ही सरपंच साहब ने बाबा को मार–पीटकर मंदिर से बाहर लाकर पटक दिया और कहा, 'ए बूढ़े! आज के बाद मंदिर के अंदर आने की कोशिश की, तो जान से मारकर फेंक दूंगा।'

बाबा अपने घर लौट गए। वहां पर खड़ा एक बच्चा यह सब देख रहा था। उसने सोचा कि गरीब या निम्न जाति के लोगों के साथ ऐसा क्या होता है? वह सरपंच साहब के पास गया। बच्चे ने सरपंच से कहा, 'अगर उस बूढ़े की जगह आप होते और आपको मंदिर के अंदर न जाने देते, तो आपको कैसा लगता?'

सरपंच साहब ने कहा, 'ऐ बालक! चल भाग यहां से।'

लड़का बहुत मायूस हुआ। वह टीचर के पास गया और बोला, 'टीचर ऐसा क्यों होता है?' टीचर ने कहा, 'ऐसा ही होता है।'

बच्चे ने कहा, 'पर संविधान में भी ऐसा नहीं लिखा है, फिर ये गाँव के लोग ऐसा क्यों करते हैं? शहर के लोग तो ऐसा नहीं करते हैं?'

वह लड़का ऊँची जाति का था। वह मायूस होकर घर चला आया। वहाँ उसने अपने पिताजी से कहा, 'पिताजी अगर आप निम्न जाति वाले लोगों को मंदिर में नहीं जाने देते हैं, तो हम ऊँची जाति के बच्चे भी मंदिर में नहीं जाएंगे।'

पिताजी ने कहा, 'नहीं–नहीं। तुम सब ऐसा मत करना। मैं सरपंच साहब से बात कर अभी सबको अंदर जाने की अनुमति दिला देता हूँ।'

बच्चे के पिताजी ने सरपंच साहब से बात की और फिर सबने तय कर सबको मंदिर में जाने की अनुमति दे दी। बच्चा बहुत खुश हुआ।

ऐसी ट्रेनिंग स्कूल में क्यूं नहीं होती

नाम : अभिलाषा वर्मा (कक्षा : 8वीं आमाझिर)

दूसरी बार यहाँ पर आकर मुझे बहुत अच्छा लगा। प्रशिक्षण में हमने खूब मस्ती की, चित्र बनाए, अखबार के लिए समाचार लिखे। अच्छे समाचार लिखना चाहिए, हमें उनसे सिखने को मिलता है। पहली बार खबर कैसे बनती है यह समझा। कित्ता मजा आता है कहानी लिखने में सर ने कहा जो लिखना है लिखो तो मैंने पानी को बचाने की कहानी लिखी – गर्मी में हम पानी–पानी करते हैं पर जब पानी होता है तो कोई नहीं बचाता। अगर पानी भी पैसे जैसा बचाएं तो कित्ता पानी हो सकता है।

कहानी - राहुल ने बचाया पानी

राहुल गाँव का एक अच्छा लड़का है। राहुल गाँव की सरकारी स्कूल में पढ़ता है। उसके पिता मजदूरी करते हैं। उसकी माताजी घरों में सफाई का काम करती हैं। वो सोचता कि मेरे घर की ये हालत होने के बावजूद मेरे माँ-बाप मुझको मेहनत करके पढ़ाते हैं। राहुल यह सोचकर अव्वल नम्बर लाता और कई बच्चे उससे चिढ़ते और उसकी बुराई करते थे।

स्कूल गाँव से थोड़े ही दूर था। वहीं पर बीच में एक बगीचा पड़ता था। वहाँ पर बच्चे मस्ती करते थे और पानी निकाल कर बर्बाद करते थे। ये सब कुछ राहुल को अच्छा नहीं लगता था। वे बच्चे पानी वैसे ही गवां रहे थे। राहुल की माँ हैंडपम्प से पानी बड़ी मुश्किल से निकाल पाती थी। कुछ दिनों बाद वह हैंडपम्प बंद हो गया और यहाँ बगीचा में बच्चे पानी वैसे ही निकालते रहे। एक दिन राहुल स्कूल से घर आ रहा था, तब वो आश्चर्य से चौंक गया कि बगीचे का नल किसी ने भी बंद नहीं किया। वो दौड़कर गया, तब तक पूरा पानी निकल चुका था।

फिर गर्मी आई और पानी कम पड़ गया। एक-एक बूंद पानी के लिए लोग तरस गए। जो बच्चे पानी निकाल रहे थे, वे भी पानी के लिए मोहताज हो गए। फिर वर्षा आई, तो राहुल ने उन बच्चों से कहा कि अबकि बार कैसा सूखा पड़ गया था, पानी मत निकालो पर उसकी कोई सुने तब तो। एक बार नल में से पानी निकल रहा था। राहुल ने जाकर नल को बंद करने की कोशिश करने लगा पर नल तो बेकार हो चुका था। वह वहीं पर सिर अड़ाकर खड़ा रहा। फिर उसका ध्यान कुड़ेदान की बाल्टी पर गया और उस बाल्टी से वो पानी पेड़-पौधों में डालने लगा। और डालते-डालते बेहोश हो गया। वहीं से उसके शिक्षक जा रहे थे, उन्होंने देखा कि राहुल बेहोश पड़ा है। उसे लोगों की मदद से घर ले गए। फिर शिक्षक ने नल को सुधरवाया। फिर अगले दिन प्रार्थना में उन्होंने राहुल को बुलाया और उसको इनाम दिया और गर्व किया।

मैम और सर बन गए अच्छे दोस्त

नाम : भगवान सिंह वर्मा

कक्षा : 7वीं आमाझिर

हमारे गांव में अमित सर और सतीश सर आए थे। उन्होंने बोला कि तुम्हें दो दिन के लिए सीहोर चाइल्ड रिपोर्टर की ट्रेनिंग के लिए चलना है। हमें ऐसा लगा कि क्या होगा, क्या करेंगे? ऐसे बहुत सारे विचार मन में उठे, परंतु यहाँ पर मैम और सर अच्छे दोस्त की तरह बात करने लगे। और हमने यहाँ पर पेंटिंग बनाई, गाने गाए, खेल खेले। यहां आकर हमें बहुत मजा आया है। मैंने सरपंच की कहानी लिखी।

कहानी - सरपंच ने सुनी बच्चों की बात

एक गांव के विद्यालय में नया-नया शौचालय बना था। सभी विद्यार्थी खुश थे। कुछ दिनों बाद उस शौचालय को गांव के लोग गंदा करने लगे। और उसके आसपास भी गांव के लोग गंदगी करते थे। सभी विद्यार्थी चिंता में पड़ गए कि इस समस्या से कैसे निपटा जाए। शिक्षक भी बहुत परेशान हो गए थे। शिक्षक ने गांव के लोगों से बात की, परंतु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। शौचालय के पास गंदगी करते बंद ही नहीं हुए। बच्चे और शिक्षक एक दिन सरपंच के पास इस समस्या को लेकर गए। सरपंच ने कहा, 'मैं अब इसका विरोध

करूँगा।'
सरपंच साहब ने चौकीदार से कहा, 'पंचायत के सभी सदस्यों को पंचायत में बुलाओ।'
चौकीदार ने गांव में डोंडी पीट दी और सभी सदस्य पंचायत के व गांव के लोग इकट्ठे हो गए। पंचायत में शौचालय की बात पर चर्चा हुई।
सरपंच साहब और पंचायत के सदस्यों और गांव के लोगों ने निर्णय लिया कि जिसने भी विद्यालय के आसपास या विद्यालय में गंदगी की, तो उसे 500 रुपये का जुर्माना देना होगा।
जुर्माना लगने के फैसले के बाद किसी ने भी स्कूल के शौचालय के आसपास गंदगी नहीं की। इस प्रकार बच्चे और शिक्षक बहुत खुश हुए। उन्होंने सरपंच साहब को बहुत धन्यवाद दिया और कहा, 'यदि आप गांव के हित में ऐसे ही सोचते रहेंगे, तो हमारे गांव में परेशानी हीं नहीं रहेगी।'

बहुत मजा किया

नाम : हरिओम वर्मा (कक्षा : 8वीं आमाझिर)
बहुत मजा किया, दोस्त बनाए – कहानियां लिखीं।

कहानी – सुधर गए सरपंच पति

एक गांव था। उसमें कोई भी सरकारी सुविधा नहीं थी। गांव में सड़क भी नहीं थी। गांव में महिला सरपंच थीं एवं उनका घर भी महल जैसा था, पर उनके घर के पास बहुत सा कचरा एवं कीचड़ था। घर में महिला सरपंच से उसका पति घर के सारे काम करवाता था। वह सरपंच को पंचायत का काम नहीं करने देता था। वे सरपंच पर दबाब डालते थे और चाहते कि उनके पास बहुत धन हो, पर सरपंच चाहती थी कि गांव के लोग शिक्षित हो जाए, वहां सरकारी सुविधाएं हो जाए और गांव में सड़क बन जाए।
गांव के लोग सरपंच की सोच को नहीं जानते थे इसलिए गांव वाले सरपंच के घरवालों को तो अच्छा समझते थे पर सरपंच को बहुत बुरा कहते थे।
एक बार गांव में चेचक की बीमारी फैल गई। गांव के लोग परेशान थे कि सरपंच साहब कुछ करते क्यों नहीं?
बीमारी फैलते–फैलते सरपंच के घर भी आ गई । सरपंच के पति को भी चेचक हो गया । गांव में लोगों की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। सरपंच पति में भी लाखों रूपए लग गए।
सरपंच ने पति से कहा, 'गांव में तो अस्पताल भी नहीं है, जो तुम्हारा इलाज करवा देती। शुरू में ही इलाज मिलने से ये परेशानी तो नहीं होती''।
तब सरपंच पति ने सरपंच से कहा, 'अब मैं रूपए का लालच नहीं करूंगा। मैं तुम्हारे साथ मिलकर गांव का विकास करूंगा।''
सरपंच पति कुछ समय बाद ठीक हो गया। फिर गांव के विकास के लिए पैसे आए। सरपंच ने गांव के लिए एक अस्पताल बनवाया और गांव की सड़क बनवाई। साफ पानी के लिए पानी की टंकी बनवाई। इस तरह गांव का विकास हुआ और गांव का पैसा गांव के विकास में लगने लगा और गांव में सुविधाएं आ गई। इस काम में सरपंच को उसके पति ने साथ दिया। गांव वाले भी सरपंच को अच्छा मानने लगे।

साम्राज्यवाद, उपभोक्तावाद और पूँजीवाद की शिनाख्त करती आज की कहानियां

डॉ राजेंद्र कुमार साव

जन्म- 1971। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर (हिंदी), नेट।

प्रकाशन- जनवादी कहानी-अवधारणा और विकास (आलोचना), आधुनिक हिंदी साहित्य के शताब्दी पुरुष (सम्पादित), निराला : व्यक्ति और काव्य-मानवीय संवेदना (आलोचना) इसके अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में शोधपत्र, आलेख और पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित। कथाकार संजीव पर एक आलोचना पुस्तक प्रकाशनाधीन।

सम्प्रति- अध्यापन और साहित्य सर्जन।

सम्पर्क-31, बड़ा आएमा, खड़गपुर, पश्चिम मेदिनीपुर 721304 (प.बं.)

ईमेल - thedrrkshaw15@gmail.com

90 के दशक के पश्चात उदारीकरण के आगमन से समकालीन जीवन में विघटन का दौर शुरू होता है। नवउदारवादी आर्थिक रास्ते के तहत विदेशी कम्पनियों ने दबे पाँव ही सही भारतीय बाजार में प्रवेश किया हो परंतु आज मजबूती के साथ खड़ी है। इसने सम्मोहन का ऐसा जबर्दस्त जाल फैलाया है कि आज कोई भी वर्ग इससे अछूता नहीं है। इसकी प्रभावकारी क्षमता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि निम्न वर्ग भी विज्ञापन द्वारा परोसी वस्तुओं को ललचाई निगाह से देख रहा है। आज सुख की परिभाषा में गुणात्मक अंतर आया है। आज भोग ही सुख का ऊँचा मापदंड बन गया है। बाजारवाद की सफलता इसी में है कि ये प्रतिरोधों को एकजुट नहीं होने दे रहा है। व्यक्ति 'अमरीकी सपने' की गिरफ्त में इस प्रकार कैद हो गया हैं कि शुभ-अशुभ, मंगल-अमंगल, ग्राह्य-त्याज्य में फर्क करने का तर्क ही नहीं जुटा पा रहा है। वस्तुतः वह वहाँ से निकलना चाहता है पर सुसंगत चेतना के अभाव में उसके सम्मोहन में जकड़ा हुआ है।

नया साम्राज्यवाद बहुराष्ट्रीय निगमों का पूंजीवाद कहलाता है। यह विश्व-पूंजीवाद है क्योंकि उसने राष्ट्रों की सीमाएं तोड़ दी है। यही कारण है कि उसका सबसे बड़ा अंतर्विरोध विश्वभर के मनुष्यों के साथ है। लेनिन ने जिस साम्राज्यवाद की व्याख्या की थी वह इजारेदार पूंजीवाद का उग्र रूप था। वही व्याख्या आज थोड़े उलट-फेर के साथ ऐसे की जा रही है कि साम्राज्यवाद उन बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास है जो सब देशों से ऊपर है और सब देशों के लोगों का शोषण

करते हैं, नियंत्रण करते हैं। जैक मैसनरोग के अनुसार, "निगमों की विशेषता यह है कि स्वयं कम से कम पैदा करके भी यह अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।"1 स्पष्ट है, निगमों की चिंता यह नहीं होती कि उत्पादन अच्छा है या बुरा। उसे बस, बने माल की खपत चाहिए । मुनाफा ही प्रमुख होता है। ग्लोबल शापिंग सेंटर की इस दुनिया में मोटा से मोटा वेतन दिया जाता है, केवल उपभोक्ता बनने के लिए।

आज की कहानियाँ उपभोक्तावादी मानसिकता का खुलकर विरोध करती है। रमेश उपाध्याय की कहानी 'आप जानते हैं' में बाजारवाद की विसंगतियों का चित्रण है। कथानायक बाजारू वस्तुओं से अपने परिवेश को दूर रखने की इच्छा जाहिर करते हुए सोचता है, "हम एक ऐसे घर का सपना देख रहे थे, जिसमें आंधी पानी, लू, धूप और बर्फ बारिश से बचाने वाली जगहें तो होंगी, लेकिन हमें घेरकर बाकी दुनिया से अलग कर देने वाली दीवारें नहीं होंगी। उस घर में समय के अनुसार जरूरी सभी चीजों के लिए जगह होगी, लेकिन किसी ऐसी चीजों के लिए कोई जगह नहीं होगी, जिसके लिए दूसरे लोग तरसें, ललचायें, हमसे ईर्ष्या करें और उस चीज को हमसे छीनने के लिए हमें मार डालने की सोचें। सिर्फ खरीदने के लिए खरीदी जाने वाली चीजों के लिए हमारे घर में कतई कोई जगह नहीं होगी। हमारे घर में पुस्तकें पढ़ने के लिए होंगी और भाषाएं बोलने के लिए, दूसरों को प्रभावित या आतंकित करने के लिए नहीं। दूरसंचार के साधन एकतरफा नहीं, दोतरफा होंगे जिनका उपयोग संवाद करने के लिए किया जाएगा, निरर्थक गपशप करने या सौदे पटाने के लिए नहीं...।"2 स्पष्टतः बाजार में आज पहले से कहीं अधिक जादुई आकर्षण है जिसका प्रभाव समाज के सभी तबकों पर समान रूप से पड़ रहा है। बाजार की सफलता इसी से आंकी जा सकती है कि सामान्य वर्ग भी इसे ललचायी दृष्टि से देखता है और इसके प्रभाव में आना चाहता है। इस विकट स्थिति में आज का कहानीकार इसके विद्रूप चेहरे को सामने ला पाने में अपने को पूरी तरह समर्थ पा रहा है- यह संतोष का विषय कहा जा सकता है।

उपभोक्तावाद का अमानवीय चेहरा अब्दुलबिस्मिल्लाह की कहानी 'खून' में देखने को मिलता है। पति की मृत्यु का समाचार पाकर भी पत्नी बेटे-बहू के साथ कनाडा में बैठी सहजता पूर्वक अपनी अँगूठी में 'अंबर' का नग लग जाने तक न आ पाने की विवशता जाहिर करती है। और सूचना देने वाले को वह फोन पर यही कहती है, "बेटा-बहू तो नहीं आ सकेंगे, यहाँ पिकासो पर एक सेमिनार हो रहा है, जिसमें 'मुगलई डिश' वाले स्टॉल की जिम्मेदारी इन्हीं पर है, हाँ वो आ रही हैं। मगर फ्लाइट की टाइमिंग ऐसी है कि परसों रात से पहले पहुँच पाना नामुमकिन है। इसलिए बेहतर यही होगा- क्योंकि उधर तो गर्मी का बुरा हाल होगा- कि उन्हें आज ही दफना दिया जाए। जब उनसे यह कहा गया कि कल तक आ जाइए। तो जवाब मिला कि उनकी वह अँगूठी कल शाम तक मिलेगी, जिसमें 'अंबर' का नग लगना है और असली अंबर तो यूरोप के किसी समंदर से आता है।"3

आज हम एक बुनियादी परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं। बाजार चीजों का विकल्प बन चुका है। शहर, गाँव, कस्बे बड़ी तेजी से बाजार में बदल रहे हैं। हर घर दुकान में तब्दील हो रहा है। संचार क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न टी०वी० अपसंस्कृति का फैलाव करने में मुख्य भूमिका अदा कर रही है। वह एक तरफ से विज्ञापनों द्वारा दर्शकों को मानसिक गुलाम बनाकर उपभोगवादी संस्कृति की शिकार बनाती है तो दूसरी तरफ हमारी ज्वलंत वास्तविकताओं को सूचना तकनीक के जरिए सरलीकृत करके सिर्फ सूचनाएं मात्र बना देती है। बहरहाल उपभोक्तावादी संस्कृति के "तमाम चीजें

विश्वभर के आदमी को एक जरूरत, एक रूप, एक जीवन शैली, एक भाषा, एक वेश दिए जाते हैं। जनता को बाजार में बदल कर बहुराष्ट्रीय निगम अपना कब्जा हमारी चेतना, हमारी भूख, हमारी प्यास, हमारी इन्द्रियों पर जमाते हैं। यह सब टी.वी. आदि के माध्यम से आसान होता है। सूचना वहन के बिना यह साम्राज्यवाद संभव नहीं। विज्ञापन, सिरीयल, खेल, मनोरंजन, खबरें सब मिलाकर एक पराया वातावरण बनाती है, जबर्दस्त वातावरण बनाती है। निगमों के हाथ में पर्यटन और खेल तक वर्चस्व के माध्यम से बन गये हैं।''4

इधर की कहानियों में जहाँ एक ओर उस कारपोरेट दुनिया का हवाला है जहाँ हर कोई, जो भी टँगड़ी मार सकने में उस्ताद है एक दूसरे का क्लोन है- एक दूसरे का पर्याय एक जैसी ब्रांड का उपभोक्ता, एक जैसी कंपनियों के कार में घूमता हुआ तो दूसरी ओर बेमानी हो उठे लोकतंत्र का चेहरा भी साफ-साफ दिखाई पड़ रहा है जिसकी खात्में का प्रयास इनके पात्र करते नजर आते हैं। इस संदर्भ में उदय प्रकाश की दो कहानियां काफी चर्चित है- पहली 'पॉलगोमरा का स्कूटर' और दूसरी 'टेपचू'।

उदय प्रकाश की कहानी 'पॉलगोमरा का स्कूटर' में पॉलगोमरा का स्कूटर खरीदने का फैसला बदलते सांस्कृतिक परिवेश का ही उपज है । वह देखता है, ''लोग बाग मारूति, एस्टीम, सिएलो, जेन, सियेरा, सुमो, होंडा, कावासाकी, सुजुकी और पता नहीं किन-किन गाड़ियों में चलने लगे थे। कहाँ से कहाँ पहुँच गये थे।''5 यद्यपि पॉलगोमरा स्कूटर चलाना नहीं जानता है, लेकिन बाजार के दबाव के कारण वह स्कूटर किस्त में खरीदता है। कहा जा सकता है कि यह उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फँसे मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विडम्बना है।

दरअसल भूमण्डलीकरण के सक्रिय हस्तक्षेप के कारण परिवर्तन की रफ्तार बहुत तेज हो गई है। 'पालगोमरा का स्कूटर' उदय प्रकाश की एक चर्चित कहानी है, जिसमें वे दिखाते हैं, ''दिल्ली केलाइडोस्कोप बन चुकी थी। लाखों प्रकार के साबुन, हजारों टुथपेस्ट , करोड़ों घड़ियाँ, हजारों कारें, जांघिये, क्रीम, ब्रेसरी, डिल्डो, सैनिटरी नैपकिंस, सी०डी०, राइफलें, रिमोट, कॉस्मेटिक्स, लक्जरी कंडोम, ट्रैंक्विलाइजर्स, टेलिफोन, फैक्स, मसाज सेंटर्स, जिम्स।... '' गौरतलब है, बाजार अनावश्यक वस्तुओं से आज अटा पड़ा है। जाहिर है, ये वस्तुएं व्यक्ति की लौलुपता को उकसाती है, जिससे ग्राहक मॉल तक पहुँच सके और मॉल की तिलिस्म में ग्राहक को कुछ न कुछ खरीदवाने के लिए उसके विज्ञापन, उसके ऑफर (मायाजाल) और उसमें मौजूद उसके कर्मचारियों की व्यावसायिक कलाबाजियाँ, ये सब मिलाकर कुछ ऐसा वातावरण उपस्थित करती है कि बेचारा कस्टमर सचमुच 'बेचारा' सा नजर आने लगता है।

दरअसल, सूचना और संचार की क्रांति से नित्य बदलता हमारा परिवेश इसी से गौरवान्वित है कि उसने हमें एक खुले बाजार में बैठा दिया है जहाँ हम तरह-तरह के साबुन, शैम्पू और क्रीम से घिरे हुए हैं और विश्व सुन्दरियाँ गढ़ रहे है। अर्थ की ताकत का राज फैलता चला जा रहा है। लोकतांत्रिक प्रणाली से समाजवादी उद्देश्यों की ओर बढ़ता गणतंत्र क्या एक धोखा है। भूमण्डलीकरण, साम्राज्यवाद एवं मुक्त बाजार की चकाचौंध के पीछे की काली सच्चाई को कोई नहीं देखता। वह साधन सम्पन्न हाथों को और भी मजबूती प्रदान कर रहा है। क्या बिडम्बना है ? समाज के एक वर्ग के लिए विकास के खुले अवसर है और दूसरा वर्ग अब भी अधिकारों से वंचित है। उसकी दुनिया अब भी जाति, वर्ग और गाँव की सीमाओं अंधविश्वासों, महाजन के शिकंजों, देह की पवित्रता और दहेज के लिए लड़ती स्त्रियों से घिरी है। जिदंगी और बाजार की इस टकराहट को जनवादी कहानी ने बखूबी चित्रण किया है।

पूंजीवादी समाज के बढ़ते हुऐ व्यावसायीकरण और उपभोग्य वस्तु के मूल्य के आधार पर मनुष्य का मूल्य आंकने की प्रवृत्ति से अनियंत्रित उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला है। यह बात उलट गई है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अब आविष्कार आवश्यकता का जनक है और विज्ञापनों के जरिए आवश्यकताएं पैदा की जा रही है। हम जिन्हें जीवन की प्रतिष्ठा के मानदंड मानते रहे हैं, उनके विपरीत दूसरे मानदंड प्रतिष्ठित करने की कोशिश की जा रही है– उपभोक्तावाद के लिए। बाजारवाद के खतरनाक पहलू की ओर इशारा करती हुई मृदुला गर्ग लिखती है, "लोकतंत्र अपने यहाँ भले दो कौड़ी का हो, बाजार के नियंत्रण को हमने सौ फीसदी आत्मसात कर लिया है। बाजार के नियंत्रण का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि प्रत्यक्ष में वह स्वतंत्रता का पक्षधर बनता है, आपको चुनने के लिए आमंत्रित करता है, ग्राहक को सर्वोपरि बतलाता है पर परोक्ष में आपके विवेक को कुंठित करता है। आपको सर्वेक्षण द्वारा सिद्ध की गयी बहुमत की राय को अपनी राय मानने के लिए उकसाता है और इस काम को तकनीक के इतने सूक्ष्म ताने–बाने के साथ करता है कि विज्ञापन के संदेश आपके अवचेतन में प्रवेश कर जाते हैं और उस पर कब्जा जमा लेते हैं। अपने यहाँ सर्वेक्षण की महिमा को देखते हुए यह अचरज का विषय नहीं है कि, विज्ञापन की दुनियाँ में भारत ने खूब नाम कमाया हैं।"7

उदय प्रकाश की कहानी 'पॉलगोमरा का स्कूटर' इस उपभोक्तावादी संस्कृति के ज्वलंत प्रमाण है। दरअसल यह उपभोक्तावाद आदमी को मूल्यहीन बनाता है, मनुष्य और समाज को दृष्टिहीन बनाता है। जाने–अनजाने ऐसे परिवेश में मनुष्य का चरित्र भी बदल रहा है। इसको अखिलेश ने अपनी कहानी 'हाकिम कथा' में बहुत अच्छे ढंग से व्यक्त किया है। इस कहानी की नायिका अपर्णा की शादी एक एस०पी० से होती है। उसे जब यह पता चलता है कि उसके पति का अवैध संबंध किसी दूसरी स्त्री से है तो वह अपने पिता को बताती है। पिता उसका ट्रांसफर 'होमगार्ड' में करा देने की बात करता है जिससे उसका दिमाग ठिकाने आ जाए। इस पर अपर्णा कहती है, "नहीं पापा, ऐसा मत करिएगा । परीक्षित ठीक हैं। बहुत अच्छा है।"8 तात्पर्य यह है कि वह चाहती है कि आमदनी कम न हो। आमदनी मूलचीज है, पति की रूचि दूसरी लड़कियों में रहे तो कोई हर्ज नहीं। नारी मनोविज्ञान में जो यह बदलाव आया है, इस उपभोक्तावाद के कारण ही।

उपभोक्तावाद और बाजारवाद की आवश्यक बुराई को संजीव की 'लिटरेचर', 'फूँटे कॉच का चस्मा', से०रा० यात्री की 'धरातल', नमिता सिंह की 'उसका सपना', अब्दुलबिस्मिल्लाह की 'पूँजी, मालऔर मुनाफा', स्वयं प्रकाश की 'ट्रफिक', 'कहाँ जाओगे बाबा', काशीनाथ सिंह की 'पांडे कौन कुमति तोहें लागी', मृदुला गर्ग की कहानी 'कलिके सत', जयनंदन की कहानी 'विश्व बाजार का ऊँट', असगर वजाहत की 'डेढ़लाइन', रमेश उपाध्याय की कहानी 'डाक्युड्रामा', संजय खाती की कहानी 'पिंटी का साबुन', अखिलेश की 'हाकिम कथा', 'मुक्ति' और संजय कुंदन की कहानी 'कोई है' आदि कहानियों में चित्रित है। समग्रता में आज की कहानियाँ उच्च वर्गीय परिवार का नैतिक स्वरूप, जो किसी तरह नैतिक नहीं है उसका बखूबी चित्रण करता है। अंग्रेजी समाज के बारे में सुना जाता था कि वहाँ कोई पाबंदी नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है, इस तरह के संबंधों में कोई आश्चर्यजनक चीज नही हैं। हमारे यहाँ पूँजीवाद बहुत देर से आया है, तो लोगों को ऐसा ही लगता है कि ये पश्चिम की चीजें यहाँ आ रही है, जबकि ये सारी चीजें पूँजीवादी व्यवस्था और नवउदारवादी आर्थिक मार्ग अपनाने के कारण है, भौगोलिक दिशा से इनका कोई तारतम्य नहीं है। आज समझ ज्यादा विस्तार की अपेक्षा रखती है, इसे बारीकी से

समझना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. पचौरी सुधीश, 'आलोचना से आगेः उत्तर-आधुनिकतावाद और उत्तर-संरचनावादी विमर्श' ,पृष्ठ संख्या : 63
2. उपाध्याय रमेश, 'आप जानते हैं ', 'वागर्थ', नवम्बरः 2005, पृष्ठ संख्या : 59
3. गौरीनाथ (सं0), 'बया' जूनः 2007,पृष्ठ संख्या : 52
4. पचौरी सुधीश, 'आलोचना से आगेः उत्तर-आधुनिकतावाद और उत्तर-संरचनावादी विमर्श', पृष्ठ संख्या : 65-66
5. प्रकाश उदय, 'पॉलगोमरा का स्कूटर','पॉलगोमरा का स्कूटर'-(कहानी संग्रह), पृष्ठ संख्या :50.
6. वही,पृष्ठ संख्या : 63
7. सिंह नमिता (सं0), 'वर्तमान साहित्य', जुलाई : 2009. पृष्ठ संख्या : 33
8. अखिलेश, 'हाकिम कथा', 'मुक्ति'-(कहानी संग्रह), पृष्ठ संख्या : 36

दो लघुकथाएँ

वीनस केसरी

जन्म-1 मार्च 1985
मूलतः ग़ज़लकार, अन्य विधाओं में कहानी और लघुकथा शामिल।

ग़ज़ल पर कई शोधपरक आलेख पत्रिकाओं में प्रकाशित। ग़ज़ल के विधान पर पुस्तक 'ग़ज़ल की बाबत' प्रकाशन प्रक्रिया में।

संपर्क -
942 मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

ईमेल-
venuskesari@gmail.com

मजदूर

'क्यों बे साले तेरी ये मजाल ... दो टके का मजदूर हो के मुझसे ज़बान लड़ाता है !'

'साहेब, गरियाते काहे हैं, मजदूर तो आपौ हैं'

'क्या बकता है हरामखो....र'

माई बाप ... पिछले हफ्ता एक मई का आपै तो कहे रहेन... 'हम सब मजदूर हैं'

चमक – दमक

बर्तन की जाली में एक लोटा और कुछ चम्मच थे। सारे चम्मच लोटा को दुनिया का सबसे अच्छा बर्तन मानते थे, उसकी जय–जयकार करते थे, लोटा हमेशा उनको चमक – दमक की दुनिया से बचने नसीहतें देता था, हमेशा उनको बताता था 'दुनिया वैसी नहीं है जैसी दिखती है, चम्मचों ! परदे के पीछे का खेल देखने की कोशिश किया करो, सच्चाई वहाँ छुपी होती है, बहुत लोग तुमको ऐसी नकली दुनिया में घसीटने की कोशिश करेंगे ऐसे लोगों से दूर रहो' और भी जाने क्या क्या नसीहतें.....

किसी ने लोटा को जाली से बाहर निकला और किचन के टाईल्स लगे चमकते दमकते फर्श पर रख दिया, लोटा लुढ़क गया .....

चम्मच बहुत दुखी हैं

चम्मच कभी स्कूल नहीं गये हैं इसलिए उनको कहावतों के विषय में कोई जानकारी नहीं है

आशा पाण्डे ओझा

जन्म स्थान- ओसियां (जोधपुर) शिक्षा- एम.ए. (हिंदी साहित्य) एल.एल.बी. हिंदी कथा आलोचना में नवलकिशोर का योगदान' में शोधरत। प्रकाशित कृतियां- 1. दो बूंद समुद्र के नाम 2. एक कोशिश रोशनी की ओर (काव्य) 3. ज़र्रे ज़र्रे में वो है (कविता संग्रह) 4. त्रिसुगंधि (सम्पादन)। देश की विभिन्न पत्र -पत्रिकाओं व ई-पत्रिकाओं में कविताएं, मुक्तक, ग़ज़ल, क़तआत, दोहा, हाइकु, कहानी, व्यंग, समीक्षा, आलेख, निंबंध, शोधपत्र निरंतर प्रकाशित।
तीन दर्जन से अधिक सम्मान व पुरस्कारों से समादृत।

ईमेल -
asha09.pandey@gmail.com

प्रेम और भक्ति का संगम व मीरा दर्शन : एक पुनर्मूल्यांकन

वीरता, श्रृंगार व संस्कार का अद्भुत संगम है राजस्थान की इस माटी में, उस पर भक्ति व प्रेम की अनन्य मूर्ति मीरां का अवतीर्ण होना सोने पे सुहागा । राजस्थान ही नहीं अपितु पूरे हिन्दुस्तान भर के भक्त कवियों में मीरा का नाम सर्वोपरि है । प्रेम और दर्द के तारों को छेड़ती मीरा स्वंय भक्ति की धुन बन गई, आज भी मीरा के मधुर गीत राजस्थान की माटी के कण-कण में गुंजते है । उन गीतों की करूणा में पानी को बहने से रोक लेने का सामर्थ्य है तो पठारों को पिघला देने वाली क्षमता भी है । जाने कितने जन्मों का दर्द मीरा के अन्तर में हिलौरें ले रहा था । मीरा कहती है-

'पूर्व जनम की प्रीत हमारी, अब नहिं जात निबारीं ।
सुन्दर बदन जोवते सजनी प्रीती भई छै मारी ।'

उसके अन्तर की छटपटाहट प्रेम और भक्ति का आवरण औढ़कर अपने आलौकिक प्रेमी पर पल-प्रतिपल के लिए न्यौछावर हो गई । मीरा बाई की अमृतमय वाणी से सिंचित ये मरूभूमि बंजर होकर भी कितनी सरस बन गयी है । सरल व सहज शब्दों में कही गई मीरां की भक्तिमयी प्रेम की रचनाएं जन-जन का कंठहार हो गई ।

भक्ति व प्रेम की प्रतिमूर्ति मीराबाई के जीवन के संदर्भ में अनेक विद्वानों के विभिन्न मत है । मीराबाई की भक्ति रचनाओं के अनेक संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, कई स्वतंत्र शोध ग्रंथ भी निकल चुके हैं, परन्तु फिर भी यह पहेली सुलझी नहीं है । मीराबाई की जन्म तिथि व देवलोक गमन की तिथि तक पर विद्वान आपस में सहमत नजर नहीं आते । मीराबाई के

पति के नाम पर भी विद्वान अपना अलग-अलग मत प्रकट करते है। परन्तु मीराबाई के जन्म स्थान व ससुराल पर सभी विद्वान एक मत नजर आते हैं। अधिकांशतः सभी विद्वानों ने मीराबाई का जन्म स्थान कुड़की को ही माना है और यह निर्विवाद सच के रूप में स्वीकार किया गया है।

मीराबाई का संक्षिप्त जीवन परिचय

मीरा के नाम से भारत का कोई भी व्यक्ति अपिरिचित नहीं है। भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, प्रणय व साहित्य में मीरा नाम समान रूप से प्रसिद्ध है। मीराबाई मध्ययुगीन राजस्थान का एक ऐसा नाम है जिसका नाम राजस्थान नहीं अपितु बंगाल, बिहार, हरियाणा, गुजरात व महाराष्ट्र में उसी आदर व श्रद्धा के साथ लिया जाता है जिस श्रद्धा व आदर के साथ राजस्थान में लिया जाता है।

जोधपुर के किले की नींव लगाने वाले राठौड़ राव जोधा जी की पोती व राव रतनसिंह की इकलौती पुत्री थी मीराबाई। राठौड़ राव जोधा जी ने अपने बाहूबल से जोधपुर नगर बसाया। उनके एक पुत्र राव बीकाजी ने बीकानेर की गद्दी स्थापित और उनके दूसरे पुत्र राव दूदा जी ने अजमेर के सूबेदार को हराकर उनसे मेड़ता प्रान्त छीन लिया। राव दूदा जी वैशाख शुक्ल तृतीया 1519 को नया मेड़ता नगर बसाया। राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र (अनुमानतः) राव रतनसिंह को बाजोली, कुड़की इत्यादि 12 गाँवों की जागीर दी हुई थी। इस जागीर के मुख्य गांव कुड़की में राव रतनसिंह की रानी कुसुम कंवर (श्री विद्यानिवास शर्मा के द्वारा मीरां स्मृति ग्रन्थ में मीराबाई की माता जी का नाम कुसुम कंवर होना ज्ञात होता है) उनकी कोख से संवत 1555-1561 के मध्य मीरांबाई का जन्म हुआ माना जाता है। वहीं ''जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण जी के अनुसार मीरा बाई की माता का नाम वीर कुंवरी और नाना का नाम मुलतान सिंह था। वे जाति के झाला राजपूत थे व गोगुन्दा गांव ब्याहें थे परन्तु इस तथ्य की किसी विश्वसनीय प्रमाण से पुष्टि नहीं होती''। मीरां स्मृति ग्रन्थ में मीरा के जीवन के स्थानीय साक्ष्य, के आधार पर विद्यानन्द शर्मा तथा धोलेराव गांव के मेड़तियों के भाट पाबूदान सिंह द्वारा मीराबाई का जन्म कुड़की ग्राम में हुआ माना जाता है वहां मन्दिर के पीछे महल भी होना माना जाता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा मीराबाई पर लिखी गई पुस्तकें पढ़ने से ज्ञात होता है कि मीरांबाई के बाल्यकाल में ही उनकी माता जी का देहान्त हो गया था परन्तु कुछ विद्वान इस बात से भी असहमत नजर आते है, क्योंकि मीराबाई पर अब तक का सबसे प्रमाणित माना जाने वाला ग्रन्थ ''मीरां पदावली'' के पद 13, 24, 36, 37, 40, 41, 61, 83, 85, 88 व 101 में माई को संबोधित् कर लिखे गये पदों के कारण मीरा की माता का अधिक दिन तक जीवित रहना माना जाता है परन्तु मेरा मत है कि स्मृतियां कभी मिटती नहीं है, हृदय के स्त्रोत कभी के सूखते नहीं है, माँ वह स्मृति है जो इंसान के हृदय में हमेशा जीवित रहती है। 100 वर्षों की वय प्राप्त कर लेने पर भी हर दुःख-दर्द में अनायास माँ शब्द ही निकलता है, मीराबाई ने भी जब जब गहन दुःख की अनुभूति की होगी तब तब माँ को पुकारा होगा व अपने पास ही पाया होगा। कहा जाता है कि अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् मीराबाई अपने दादा राव दूदा जी के साथ मेड़ता में रहने लगी थी। राव दूदा जी पक्के वैष्णव भक्त थे, श्री चतुर्भुज जी का जो मन्दिर मेड़ता में है। वह दूदा जी की भक्ति व वैष्णव पंथ के साक्षी के रूप में आज भी खड़ा है। मीरा के दादा राव दूदा जी श्री कृष्ण के परम भक्त व धर्मात्मा व्यक्ति थे। भक्त पितामह के कारण मीरा के परिवार में धार्मिक भावनाओं का प्रधान्य स्वाभाविक ही था मीरा को भगवत् प्रेम के संस्कार बचपन से ही मिले। उन्हें बाल्यकाल से ही श्री गिरधर का इष्ट था। मीरां को

बचपन से कृष्ण भक्ति और प्रेरित करने वाली दो घटनाओं का प्राय: उल्लेख मिलता है–

1. बचपन में एक बारात को देखकर जब मीराबाई ने अपनी माता से पूछा माँ मेरा वर कौन है ? इस अबोध प्रश्न का अबोध उत्तर देते हुए माँ ने श्री गिरधारी जी की मूर्ति की ओर इशारा कर दिया तभी से मीरा मन ही मन श्री गिरधारी जी को अपना वर मान बैठी थी ।

2. एक साधु के पास श्री कृष्ण की सुन्दर छवि की मूर्ति देखकर मीरा ने उसे अपने बाल्यकाल में ही पा लेने का हठ किया परन्तु साधु ने उसे मूर्ति देने से इन्कार कर दिया पर रात्रि में साधु को स्वप्न आया साक्षात् श्री कृष्ण जी ने मूर्ति मीरा को दे देने का आदेश दिया इसलिए साधु मीरा को अवतारी समझ मूर्ति देते गया । मीरा के हृदय में कृष्ण प्रेम का बीज बचपन से ही पुष्पित व पल्लवित हो कर किशोर वय आने तक वट्वृक्ष बन चुका था ।

मीरा का विवाह– मीरा का विवाह मेवाड़ के महकमे की तवारिख से पुष्टि होती है कि मीराबाई का विवाह संवत 1573 में मेवाड़ के प्रसिद्ध वीर राणा सांगा (राणा संग्राम सिंह) के पुत्र युवराज भोजराज के साथ हुआ परन्तु उनके भाग्य में वैवाहिक जीवन के दिवस अधिक न थे । विवाह के 5/7 बरस के अन्दर राणा सांगा के जीते जी ही युवराज भोजराज का शरीरान्त हो गया। पूरी जवानी अनुभव करने का समय आते–आते तो मीरा विधवा हो गयी । राणा सांगा के देवलोक गमन के पश्चात् राणा सांगा का पुत्र रतन सिंह गद्दी पर आया, परन्तु अन्दरूनी अदावत का शिकार बन गया। उसके बादा राणा सांगा का दूसरा पुत्र विक्रम सिंह हाड़ी रानी करमेती का सबसे बड़ा पुत्र गद्दी पर आया। विक्रम बहादुर था परन्तु खुशामद परस्त व हल्की वृति के निम्न कोटि के लोगों के मध्य ही फंसा रहता था। मीरा बाई को अनेक प्रकार से दु:ख देने वाला तथा यदा–कदा उनके पदों में आने वाला जिस क्रूर व घातक राणा का उल्लेख आता है वह यही राणा विक्रम था। मीरा के जीवन में भौतिक कठिनाईयों का सिलसिला उनके पति व ससुर की मृत्यु के पश्चात् राणा विक्रम के गद्दी पर बैठने के साथ शुरू हुआ। मीरा का मुक्त स्वभाव, साधु–सन्तों से मेल–जोल राणा को फूटी आंख ना सुहाता। राणा इसे कुल की मर्यादा के खिलाफ समझता था, कई बार राणा व अन्य परिवार जन द्वारा मीराबाई को समझाये जाने पर भी जब मीरा के व्यवहार में बदलाव नहीं आया तो राणा ने मीरा की जान लेने के उद्देश्य से मीरा के पास विष चरणामृत कहकर भिजवाया। राणा को यह विश्वास था कि चरणामृत नाम दे देने पर मीरा यह विष भी विश्वास से पी जायेगी। मीरा भी यह विष चरणामृत मानकर पी गयी, विषपान के बावजूद मीरां मरी नहीं, मीरा ने इसे अपने आराध्य का अर्घ्य माना ।

'आपुन गिरधर न्याव कियौं यह छान्यौ दूध रू पानी।
जानि बूझि चरणामृत सुनि पियो नाहिं बौरी झौरानी।'

इससे यह ज्ञात होता है कि मीरा को इस चरणामृत के नाम पर भेजे गये जहर का भान था, उसे पीकर मीरा प्रेम की कसौटी पर खरी उतरी– 'कंचन कसत कसौटी जैसे, तन रह्यो बारह बानि।' यह मीरा के प्रेम की शक्ति व अपने आराध्य प्रभू पर अटूट विश्वास ही था जिसकी बदौलत मीरा जहर को भी अमृत की तरह पचा गई।

मीरा कहती है–

'राणा जी थे जहर दियो म्है जाणी ।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारा बाणी ।
लोक लाज कुलकाण जगत की, दई बहाय जस पाणी ।
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी ।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी ।
सब सन्तन पर तन मन वारो, चरण कंवलल पटाणी ।
मीरां को प्रभु राखि लई है, दासी अपनी जाणी ।'

इसी तरह पिटारी में नाग भेजे जाने का उल्लेख भी कई विद्वान लेखकों के लेखों में व स्वंय मीरा के पद में आया हैं। राजघरानें की कुलवधू का संतो की मंडली के साथ सत्संग करना, सुध–बुध खोकर नृत्य करना राजपरिवार को अपनी बदनामी लगता था।

राजपरिवार अपनी बदनामी से त्रस्त होकर मीरा को यह सब करने से रोकने लगा । मीरा पर राणा का रोष बढ़ता ही गया । लोक-लाज के इसी भय के कारण मीरा को भक्ति इस मार्ग से जिस पर वह स्वच्छन्द और निर्भीक होकर चल पड़ी थी, रोकने का हर सम्भव प्रयास किया गया, परन्तु कृष्ण प्रेम के रंग में रंगी में मीरा को राणा द्वारा भेज गये साँप में भी सालिगराम ही नजर आये ।

'काला नाग पिटार्या भेज्या, सालिगराम पिछाण्या ।'

कृष्ण रंग में रंगी मीरा का समस्त संसार कृष्णमय है । मीरा की सुर-सरिता में कृष्ण नाम के गीतों की लड़िया बहती है। उसकी पलकें कृष्ण के सपनें बुनती हैं । उसके अन्तर में कृष्ण वियोग का दुःख कराहता है । उसके मुख पर कृष्ण स्मरण की हंसी बिखरती है । उसका श्रृंगार, उसका प्यार, उसका संसार, उसका जीवनाधार सब कुछ कृष्ण ही है ।

'मीरां लागो रंग हरी, औरन रंग अँटक परी ।
चूड़ो महाँरै तिलक अरू माला, सीलबरत सिणगारो ।
और सिंगार म्हाँरै दाय न आवै, यों गुर ग्यान हमारो ।
कोई निन्दों, कोई बिन्दो म्हें तो, गुण गोविन्द का गास्याँ ।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारै, उण मारग म्हे जास्याँ ।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्याँ, काँई करसी म्हाँरो कोई ।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होई ।'

मीरां प्रेम और भक्ति का संगम-भक्ति का संसार अधिक जटिल नहीं है । ईश्वर विषयक परम अनुराग ही तो भक्ति है। अनुराग का आधार प्रेम तथ्य है। भक्ति पथ की प्रेम साधना का, प्रेम प्रधान आधार है । प्रेम में एक उन्माद होता है, एक पागलपन होता है उन्माद प्रेमी को पा लेने का पागलपन, प्रेमी को समर्पण का। यही उन्माद, यही पागलपन मीरा की प्रेम-भक्ति में भी है। दुनिया व प्रेमी की दृष्टि में प्रेम को देखने के नजरिये में रात-दिन का फर्क होता है ।

मीराबाई भी कहती है-

'अट्क्यां प्रांण सांवरों, म्हारा जीवण सूर जडि ।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी लोक कह्यां बिगड़ी।।'

मीरा का प्रेम इस लौकिक जीवन को आलौकिक करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । मीरा ने श्रीकृष्ण प्रभु से प्रेम कर, स्वंय को उनकी परिणीता बनाकर एक जन्म के लिए नहीं बल्कि जन्म-जन्मांतरों के लिए स्वंय को अखण्ड सौभाग्यवती बना लिया ।

मीरा स्मृति में सकलनारायण जी शर्मा "मीरा की पराभक्ति" लेख में लिखते है कि मीरा बाई ने अपने मीराबाई नाम को सब तरह से चरितार्थ किया है। जिसकी एक-एक सांस ईश्वरमयी हो गई है स्वासः अर्थात् सूर्य पुत्री मीरा सूर्यवंश से संबधित थी ही, प्रकाशः आत्मा ज्योति की पुत्री वह अपनी साधना से बन गई' ईश्वर को अपने पति के रूप में व स्वंय को ईश्वर की पत्नी के रूप में माना इस अर्थ में भी वह प्रेम भक्ति की लक्षणा से सार्थक रूप में मीराबाई ही है ।

निष्काम भक्ति पराभक्ति मानी गई है शरण प्रति पत्ति पराभक्ति है श्री मीरा जी को शरण प्रति भक्ति हो गयी थी । लड़कपन में ही श्री गोपालजी से उनकी कान्तासक्ति हुई ।

मीराबाई का एक पद-

''माई म्हाणो सुपणा मां परणयाँ दीनानाथ ।
छप्पन कोटां जणां पधार्यां, दुल्हो श्री ब्रज नाथ ।
सुपणां मां तोरणं बँध्यारी सुपणां मां गह्या हाथ ।
सुपणां मां म्हारे परण गया, पायाँ अचलसोहाग ।
मीरां रो गिरधर मिल्यारी, पुरब जणम रो भाग ।'

ग्यारह प्रकार की आसक्तियों में उनकी कान्ताशक्ति स्वभाविक सी हो गई थी। विवाह के समय मीरा बाई ने अपने परिवार जन को अपनी भगवान श्री गोपाल से सपने में विवाहित होने की बात बताई थी परन्तु उनकी बात को बचपना समझकर अनदेखा कर दिया गया, जबकि मीरा बाई तो भगवान को साक्षात् अपना एकमात्र स्वामी मानती थी। श्री कृष्ण के सिवा अन्य किसी को अपना पति नहीं मानती थी। मीरा का सांसारिक विवाह जिसके साथ हुआ वह पति देह धरे मात्र का भर्त्ता था। वास्तव में तो वे अपना वर अपने बालपने के सखा गिरधारी को ही मान चुकी थी और उसी विवाह को वह

आजीवन सच्चा विवाह मानती रही। श्री सकल नारायण जी शर्मा का लेख "श्री मीरा जी की पराभक्ति" (मीरा स्मृति ग्रंथ) में विवाह के समय भी मीरा ने अपनी कठिनाई बताई थी वे अपने ससुराल में अपने इष्ट देव को साथ लिए गयी। सुहागरात में ठाकुर जी को शयन गृह सिंहासन पर विराजमान कर दिया और कहा कि-प्रभु आप अपनी दासी को बचाईये साधारण मनुष्य भी अपनी भार्या की रक्षा करते हैं आप तो त्रिलोकी नाथ हैं अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान कीजिए। राणा शराब पीकर आए और ठाकुर जी को देखकर लौट गये । उनका सम्भाषण मीरा जी के साथ कभी न हुआ (पृष्ठ 57 मीरा स्मृति ग्रंथ) मीरा किसी और को अपना पति मानती भी कैसे ? वह अपने सांवरे से लगे अपने नेह को नहीं तोड़ पाई, मीरा तो श्री कृष्ण को अपने जन्म-जन्म का पति मानती थी। मीरा कहती है-

थांणे कांई कांई बोल सुणावा महाँरा साँवरा गिरधारी।
पूरब जणम री प्रीत पुराणी, जावा णाँ गिरधारी।
सुन्दर बदन जोवताँ साजण, थारी छबि बलिहारी।
म्हाँरे आँगण स्याम पधारो, मंगलगावाँ नारी।
मोती चैक पुरावाँ णेणाँ, तण मण डाराँ वारी।
चरण सरण री दासी मीराँ, जणम जणम री क्वाँरी।'

वह अपने जनम-जनम के साथी को छोड़कर किसी नये वर की अभिलाषा नहीं कर सकती थी उसका यह पति भक्ति प्रेम इतना व्यापक है कि जोगी, ब्रह्म, राम, कृष्ण, प्रेम, सखा सब उसी के विविध नाम है वह निर्गुण परब्रह्म व सगुण कृष्ण एक साथ है।

सौन्दर्य और प्रेम सीमाओं में कब बाँधे जा सके है ? मीरा का प्रेमी हर तरफ हैं क्यांकि मीरा का प्रेम हर तरफ हैं । मीराबाई का प्रेम दुनिया का ताप और संताप सहकर कम न हुआ बल्कि और गहराता गया ।

''रमईयां मेरे तोही सूँ लागी नेह ।
लगी प्रीत जिन तौडे ़रे बाला, अधिको कीजै नेह ।'

राणा व परिवार के घात षड़यंत्र भी मीरा को प्रेम-भक्ति पथ से विचलित न कर पाये, डिगा नहीं पाये, लोक-लाज का भय भी मीरा को रोक न पाया ।

इन्सान जिसको जानता है उसे और जानना चाहता हैं, जिसे मानता है उसे और मानना चाहता है, जिसे पूजता है उसे और पूजना चाहता है मीरा भी अपने आराध्य श्री कृष्ण को वक्त के साथ और अधिक जानती, मानती व पूजती गई। मीरा तो सांवरे से अलग स्वंय का अस्तित्व ही नहीं मानती थी। वह स्वंय को काया और गिरधारी को आत्मा मानती थी। जहाँ एक बार घनिष्ठ स्नेह ने वास कर लिया हो वहाँ कभी फिर कोई विराग, उदासीनता पैदा नहीं हो सकती, न लोक-लाज, न कुल के संस्कार, न मर्यादा ना ही कोई भय प्रीत के पंछी को प्रेम के आसमान में उड़ने से रोक सकता है। मीरा बाई के अन्तर में कृष्ण प्रेम भक्ति की सरिता बहती थी और जा-जा कर अपने प्रियतम सागर श्री कृष्ण से मिलती थी। प्रेम संसार की श्रेष्ठ कृति है फिर मीरा ने तो साक्षात् परमब्रम्ह भगवान श्री कृष्ण से प्रेम किया था। फिर ईश्वर से प्रेम करने वाली आत्मा निःसन्देह श्रेष्ठतम् ही होगी। ऐसे भक्तों से ही भगवान जाने जाते हैं, माने जाते हैं, पूजे जाते हैं। अगर बिना भगवान के भक्त का कोई अस्तित्व नहीं है तो भक्त के बिना भगवान का भी क्या अस्तित्व है ? मीरा की परमभक्ति व मीरा के अथाह कृष्ण प्रेम ने श्री कृष्ण का गुणगान कर स्वंय को ही नहीं बल्कि भगवान श्री कृष्ण के पद को भी एक नई ऊँचाई पर पहुँचा दिया। मीरा जानती थी कि सांसारिक प्रेम क्षण भंगुर है व प्रभु प्रेम ही अविनाशी है, अटूट हैं, अमर हैं, उत्कृष्ट है।

मीरा बाई की लगन जगत के सर्वोपरि स्वामी श्री कृष्ण से लगी है। श्रीकृष्ण में अनुरक्त हो उनका आश्रय पा कर मीरा को लौकिक एषणा का मोह नहीं रहा। मीरा के अधिकतम पदों में कृष्ण प्रेम की दीवानगी व उसके वियोग में व्याकुल विरहणी के स्वतः स्फूर्त उद्गार है-

''स्याम मिलण रो घणो उमावों, नित उठ जोऊँ बाटडियाँ ।
तलफत तलफत बहू दिन बीता, पड़ी विरह की पासडियाँ ।
अब तो बेगि दया कारे साहिब मैं तो तुम्हारी दासडियाँ ।
नैण दुःखी दरसण कू तरसै, नाभिन बैठ सांसडियाँ ।
राति लागनि छूटण की नाहीं अब क्यौं कीजै आंटडियाँ ।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, पूरां मन मण की आसडियाँ ।'

मीरा के मन में श्याम मिलन की उमंग है, उल्लास है, नित्य उठ-उठ वह अपने प्रभु की राह देखती है प्रभु दर्शन के बिन मीरा का मन उद्विग्न है।

प्रेम के रूप भी अनेकानेक होते है हर संबंध में वह एक नया रूप धारण कर लेता है जहाँ एक और पति पत्नी के मध्य दाम्पत्य रति के रूप में प्रकट होता है वहीं दूसरी और माता-पिता, पुत्र-पुत्री, गुरू-शिष्य-शिष्या के मध्य वात्सल्यता का रूप धारण कर लेता है। कहीं वह श्रद्धा का आवरण ओढ़ लेता है तो कहीं भक्ति का प्रतिरूप बन जाता है, कहीं स्नेह का तो कहीं उदारता का जैसे एक ही धारा या जल कहीं तरंग बन जाती है तो कहीं बुलबुला और कहीं भंवर, मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम, प्रेम हर रूप में है, साथ में सुखात्मक भी है व दुखात्मक भी। कृष्ण प्रेम ने मीरा के जीवन को दोनों पक्षों से भली भाँति भिज्ञ करा दिया । कृष्ण प्रेम के सुख में डूबी मीरा कहती है-

'म्हारो गोकुलरो ब्रजवासी
ब्रज लीला लख जण सुख पावाँ, ब्रज बण तां सुख रहसी ।
णाच्याँ, गावाँ, तालबजावाँ, पावाँ आणद हाँसी ।'

वहीं कृष्ण वियोग के दुःख-दर्द से द्रविभूत मीरा लिखती है-

'दर्द की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या न कोय ।
मीरा के प्रभू पीर मिटै जब बैद सांवलिया होय ।'

अन्य एक पद में कृष्ण दर्शन की व्याकुल मीरा लिखती है-

'घड़ी एक नहीं आवड़ै, तुम दरसण बिन मोयं ।
तुम हो मेरे प्राण जी, का सूं जीवण होय ।
धाण न भावै निंद न आवै विरह सतावै मोइ ।
घायल सी घूँमत फिरूँ रे, मेरा दर्द दर-दर जाणे कोय ।'

प्रेम-वियोगिनी आँखों में नींद नहीं है वेदना से धनीभूत हो उठी मीरा लिखती है-

'मैं विरहणि बैठी जागूं जगत सब सोवैरी आली ।
विरहणि बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै ।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अंसुवन माला पोवै ।
तारा गिण-गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलकर बिछुड़ न जावै ।'

स्वप्नों की वाटिका में बैठ कर मिलन सुख के स्वप्न निहारती मीरा की मन सागर की स्वप्निल तरंगें एक दम ऊँची और रंगीन हो जाती कृष्ण को पा लेने की ख्वाहिश को अपनी आत्मा का आयाम बनाकर जीती है मीरा। कभी सुंदर भविष्य के सुखद स्वप्न बुनती है, तो कभी दर्द के आंसूओं से प्रेम बेल को सींचती है। वह अपने गिरधर को रीझाती है, मानती है, आकृष्ट करती है। वह खुद को कल्पनाओं के सागर में मुक्त छोड़ प्रेम-भक्ति की अनन्त गहराई नापती रहती है। भक्त और भगवान के बीच विरह व मिलन भाव कल्पना पर ही आश्रित है । रोम-रोम में, मन में, नयन में, भुवन में जो साजन समाया है उससे वियोग कैसा, उससे योग और वियोग सबकुछ दृष्टिभेद के कारण ही है । मीरा के वियोग की विविध दशाओं के वर्णन से यह प्रकट है कि मीरा को निज प्रियतम का संयोग सुख प्राप्त हुआ था इसलिए उनका वियोग इतना तीव्र है और वेदना सिक्त है। उसके शब्द-शब्द में तरल अश्रुओं की आद्रता है। सजल वेदना के गीले गान है जो हृदय में करूणा प्रवाहित करते है। कन्हैया से प्रीत करके वो ऐसी व्यथा अनुभव करती है कि जब विरह की अग्नि कलेजे में गहरे चुभने लगती है तो कराहती हुई मीरा की व्यथा असह्य हो जाने पर आप ही व्यक्त हो जाती है।

''आली री म्हारे नैना बाण पड़ी,
मूरत हियड़ा अनिसू गड़ी ।'

कृष्ण भक्ति और प्रेम में डूबी मीरा का इस मार्ग पर चलना भी इतना सहज न था। मीरा की भक्ति-भाव को भी कुल की मर्यादा के खिलाफ समझा गया, कुचक्रों से घिरी मीरा अपना हर दुःख-दर्द गिरधारी के चरणों में धरती गई, परन्तु एक प्रचलित कथा के अनुसार राणा ने एक बार क्रोध में कृष्ण की मूर्ति मीरा से छीन उसे बहती धारा में फैंक दिया, मीरा

अपने प्रेम से अपना बिछोह सह नहीं पाई और वो भी उसी धारा के बहाव में कूद गई । माना जाता है कि मीरा बच गई परन्तु उसने अपना ससुराल चित्तौड़ सदा-सदा के लिए छोड़ दिया और मेड़ता, पुष्कर, वृन्दावन होते हुए द्वारिका पहुँच गयी। कुछ सालों वहाँ रही और अंततः मीराबाई द्वारिका में रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गई।

नारायण सिंह भाटी लिखते है- "मीराबाई मध्ययुगीन राजस्थान रो अैक ऐड़ो चरित है जिण री जोड़ रो दूजों चरित सोधणों मुसकल हैं । उण रो अजूझौ उण समै री देण हैं जद राजस्थान री सामन्ती परंपरा रै समंद री लैरा आप री पुरां पूर छौळां माथैं ही। मीरां उण अथाह समंद नै तिर नै पार निकळी औही मीरां रै सांचै नै सबळौ जीवण-पथ है- इतिहास री छोटी-मोटी गळियां सूं इधकी उणरी अंतर जात्रा जितरी रोसीली लखावै उतरी ही रूपाळी है। मीरा आपरै जुंझारू जुग खातर ही नही, जुग-जुग रै झुलसते असम अंतस खातर अणंत प्रीत राची जीवण नारी री संजीवणी संगती रै अझूझते उभाव नै आपरै जीवण री साख सूं संवार गीता री कड़ी-कड़ी में मुक्त करगी। उण री आ मूरती ही अनंत काललैरा माथै पूलबणावती जासी अर बिस्व-नारी हर जुग रै दबाव सूं ऊँची उठ उण माथै अनुरागी आत्म विश्वास रा पग मांडती जासी।'

वहीं मीरा स्मृति ग्रंथ में अपने लेख 'मिस्टिक लिपिस्टक और मीरा' में प्रोफेसर शिवधर पांडेय लिखते है-भक्ति की पराकाष्ठा स्त्री ही के हृदय में मिलेगी पुरूष के नहीं। उतना समर्पण वही कर सकती है। इसी से मीरा के पद सूर के भी पदों से अधिक दिव्य और अर्न्तयामी हैं भारत के उन पुण्य प्रदेशों में जहाँ कृष्ण भगवान स्वंय बिखरे थे, राजस्थान, ब्रज, द्वारिका आदि में वहाँ मीरा का प्रभाव पड़ा प्रत्यक्ष है। दूसरे पदों में न वह जीवन की चमोट है न वह विजय नाद, न वह अधिकारी दीनहितकारी पुकार। वैष्णव सिद्धातों की ऐसी कठोर परीक्षा और ऐसी विश्वव्यापिनी विजय कहीं अन्यत्र नहीं देखी गई। मीरा जय पत्र है। मीरा विजय नाद है। कर्म, ज्ञान, उपासना का कर्मठ व ठोस मेल सामने आया। सो भी ऊँचे से ऊँचे घराने में और सबका हृदय द्रवीभूत ही न कर गया, जयजयकार से भर गया। हीरों का व्यापार, हीरे की लेखनी लिख गई। वे लिखते है भारत के चारों कोनों में चारों धाम है और चार विजय। उत्तर में शंकर और व्यास की वेदान्त विजय। पूर्व में गंगा विजय। दक्षिण में लंका विजय और पश्चिम में मीरा विजय । मीरा सा व्यक्तित्व व मीरा की सी सरस्वती संसार में अन्यत्र नहीं है। यह भारत के भाग्य थे कि मीरा ने गोपियों से भी बढ़कर धर्म की साक्षी दी और दुहाई की विजय दिखाई। उसके हृदयदीप सदा जगमगाऐंगे। भारत की भक्ति झलझलाऐंगे और गोलोक सानंद पहुँचाऐंगे। अंत में प्रेम और भक्ति की इस अनूठी पावन नदी मीराबाई को जिसकी बहाई हुई प्रेम भक्ति की पावन गंगा आज भी इस मरूधरा पर प्रवाहित है, उन्हें मैं शत्-शत् नमन् करती हूँ, वन्दन करती हूँ।

इक्कीसवीं सदी में कविता की दिशा

हिन्दी कविता शताब्दियों के मुहाने पर– नब्बे के दशक में हिन्दी में एक कविता खूब चर्चित हुई। कविता थी 'प्रेम पत्र' जिसे बद्री नारायण ने लिखा था। संयोग देखिए कि उसी दौर में सुभाष घई की एक फिल्म का एक गीत भी खूब चर्चित हुआ था। गीत था 'इलू इलू'। यह गीत मनीषा कोईराला और विवेक मुशरान पर फिल्माया गया था। यह वही समय था जब नई आर्थिक नीतियाँ भारतीय व्यवस्था में दाखिल हो रही थीं । बाजार से लाइसेंस राज का खात्मा हो रहा था।

कवियों से पूछा जाना चाहिए कि क्या वे कैलेण्डर के हिसाब से कविताएँ लिखते हैं। मसलन अगर मार्च का महीना चल रहा है तो मार्च वाली कविताएं, सितम्बर आ गया तो सितम्बर वाली कविताएं। क्या ऐसा भी है कि आज दिल्ली में एक मोमबत्ती जुलूस निकले तो कल दिल्ली का कवि मोमबत्ती जुलूस पर कविता लिख देगा । मैंने अपने तईं पता किया तो मालूम हुआ कि नहीं, ऐसा तो नहीं होता। होता तो कविताएं मौसम विभाग की सूचनाओं की तरह किसी फाइल में बंद पड़ी होतीं या फ़िर किसी अखबार की हेडलाइन बनकर रद्दी में तुल गई होतीं । कहना यह है कि तारीखों और घटनाओं का कविता के अंत:पुर में दाखिल होना एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। बीज ज़मीन पर गिरते ही उससे पौधा नहीं फूट पड़ता। दिन–महीने–साल–दशक कविता की मिट्टी में खाद–पानी की तरह गलते–खपते हुए अपनी छाप छोडते हैं। यह गर्भ–काल(gestation period) कितना लम्बा होगा यह कवि की चेतना की अपनी बनावट पर निर्भर करता है। इसका कोई तय फार्मूला विकसित नहीं किया जा सकता कि एक ऐतिहासिक आर्थिक–सामाजिक अथवा राजनैतिक संदर्भ को अमूमन कितने दिन के भीतर कविता की संरचना के भीतर प्रवेश कर जाना चाहिए। हालांकि ऐसी नादान कोशिशों के उदाहरण भी कम नहीं मिलते।

नीलकमल (कविता का युवा स्वर)

पिछले दिनों एक जल्दबाज़ी भरी कोशिश कुछ कवियों संपादकों की ओर से की गई। उनका तर्क था कि नब्बे के दशक को हिन्दी कविता में वैसे ही निर्णायक मान लिया जाए जैसे भूगोल के नक्शे पर मैकमोहन लाइन। आग्रह यह कि सोवियत संघ के विघटन और उदारीकरण–निजीकरण–भूमंडलीकरण के बाद की हिन्दी कविता किसी अलग ही रंग में रंग चुकी है और इसे तर्कातीत मान लिया जाए। कुछ लोगों ने मान भी लिया । कलकत्ता के निकलने वाली पत्रिका 'वागर्थ' ने तो दो–तीन अंक ही समर्पित कर डाला एक लॉन्ग नाइंटीज़ फ़ेनामेना के नाम । मैं नहीं जानता कि कवियों को एक

खास काल-खण्ड में जन्म लेने या एक विशेष समय-काल में क़लम उठाने के कारण कई किस्म के अग्राधिकार सहज ही प्राप्त हो जाते हैं । पिछले बीस-एक साल की हिन्दी कविता की वे कौन सी उपलब्धियां हैं जिनके आधार पर एक खास बिन्दु पर रुक कर यह कहा जा सकता है कि हाँ यही है वह कविता जिसमें सोवियत संघ के विघटन का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है या कि उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण का आर्थिक-राजनैतिक आख्यान मौजूद है। यह कह पाना बहुत आसान तो नहीं होगा। सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों का कविता में प्रकटीकरण जिसमें लक्षित किया जा सकता है वह इकाई है मनुष्य। कवि को मनुष्य के बदलने में समय के बदलने को देखना होता है। जब कवि का स्टैथोस्कोप मनुष्य की छाती पर न रख कर कैलेण्डर के पन्नों पर रखा जाएगा तो दिक्कतें पैदा होंगी।

मनुष्य के स्तर पर पिछले बीस-एक साल में जो अभूतपूर्व बदलाव आया वह यह कि हाशिये पर खड़े आदमी को और ज़्यादा हाशिये के भीतर ढकेला गया। अर्थशास्त्री इसे 'मार्जिनलाइजेशन ऑफ द मार्जिन्ल्स' कहते और बताते हैं। इस व्यवस्था में धनिक पहले से कई गुना अधिक धनी होते चले गए । इस बदलती हुई व्यवस्था में विकास का अर्थ और संदर्भ ही बदलता चला गया। बहुत विस्तार में न भी जाएँ तो इतना ज़रूर जान लें कि मनुष्य के लगातार गहरे होते चले गए दुःखों के कारण बदलते गए, दुःख नहीं बदले। संघर्ष की आँच धधकने की बजाय मद्धम होती चली गई। लेकिन एक बात इस दौर में यह हुई कि जो दुनिया एक केंद्र के इर्द-गिर्द सिमटी थी वह अब फैल चुकी थी । उसका विकेन्द्रीकरण हो चुका था। कविता के दायरे में इन वर्षों में पहल, आलोचना या हंस में छपे बिना भी एक लेखक के लिए अपनी आवाज़ को असरदार तरीके से रखना संभव था। यह सही मायने में उदारीकरण की एक छाप थी । सोशल मीडिया, खासकर फ़ेसबुक और ब्लॉग ने संपादकों को निस्तेज करने का महत्वपूर्ण काम किया । कवियों की एक नई फ़ौज हिन्दी कविता के घर में प्रवेश कर चुकी है और मठाधीश विस्मय से उसे ताक रहे हैं । राष्ट्रीय संदर्भों में दलित राजनीति और क्षेत्रीयता के उभार से इन बातों को जोड़ कर देखा जा सकता है। यह मोनोपोली अर्थात एकाधिकार के विखंडन का दौर है।

जब हम शताब्दियों के मुहाने पर खड़े होकर समय को देखते हैं तो हमें इस बात का ख्याल रखना ही होगा कि इस दौर में वर्चस्ववादी राजनीति ने लोकतन्त्र के भीतर सामंतवाद को जिस तरह जगह दी है उसी तरह इसने विचार के ढाँचे में वर्णवाद को भी पनाह दी है। ऊपर-ऊपर उदार दिखने वाली यह व्यवस्था भीतर से उतनी ही क्रूर और हिंसक है। आप मेरी बात का यकीन न भी करें तो पिछले वर्षों में हिन्दी कविता में पनपे पद-पुरस्कार-पैसे के खेल को एक बार ज़रूर देख लें । समय को समझे बिना समय के साहित्य को समझना दुष्कर होता है । तथाकथित विकास ने कुछ टूल्स या उपकरण हमें ज़रूर मुहैया करावा दिये हैं लेकिन इन उपकरणों तक हमारी पहुँच उनके नियंत्रण से बाहर थी इसलिए हम तक पहुँच सकी। यह उदारता तो कतई नहीं थी। बाज़ार हमारे घरों के भीतर अपनी पैठ बना चुका है। उसकी नज़र में हम मनुष्य से पहले उपभोक्ता हैं। वह अपने मानवीय मुखौटे में हमसे अपने लिए मुनाफे का सौदा तलाश रहा है। इस खेल को समझना होगा।

समय कठिन है। नया है। कविता इस समय को कितना पकड़ पा रही है यह हमारी चिंता का विषय है। कई बार समय टुकड़ों में दर्ज़ होता है तो इसलिए कि समय की हमारी समझ उसके एक सिरे को पकड़ कर बनी होती है। बहुत कम ऐसी कविताएं हमारे पास हैं जिनमें समग्रता में समय को पढ़ा और समझा जा सकता है। सुख और संतोष

की बात यह है कि हिन्दी कविता का स्वर आज केदार–बद्री–राजेश–मंगलेश तक सीमित नहीं है, उसके किसी गृह–कोण में सुरेश निशान्त, आत्मारंजन, कमलजीत चौधरी जैसी आवाज़ें भी अपना आलाप साध रही हैं। कविता को बड़ी उम्मीद के साथ, बहुत सावधानी से देखने की ज़रूरत है। उसे कैलेण्डर में नहीं आदमी की आंखों में पढ़े जाने की ज़रूरत है।

विजेंद्र (वरिष्ठ चित्रकार और कवि)

'कविता का वर्तमान' मेरे लिए कविता का समकाल ही है। काल, सतत गतिशील पदार्थ का एक रूप (Form) है। चाहे कोई काल हो वह गतिशील पदार्थ का रूप ही रहेगा। अतः काल के रूप को यदि समझना है तो उसमें निहित कथ्य को समझना जरूरी है। चाहे 'वर्तमान' कहें या 'समकाल' दोनों ही उनमें निहित कथ्य के रूप ही हैं। विषय की ध्वनि है कि हम आज की कविता में निहित वस्तु के कथ्य, शिल्प और रूप को समझें। मसलन हम लोकतंत्र को अपनी जीवन पद्धति मानते हैं। जैसे काल गतिशील पदार्श का रूप है ठीक उसी तरह लोकतंत्र आज की व्यवस्था का एक राजनीतिक रूप (Political Form) है। अगर लोकतंत्र को सही सही समझना है तो हम इसके कथ्य को बिना समझे उसे नहीं समझ सकते। दूसरी बात, किसी भी यथार्थ की दो बातें बहुत प्रमुख हैं। एक तो जो हमें ऊपर से दिखाई देता है। सौंदर्यशास्त्र की भाषा में जिसे हम छाया प्रतीति (appearance) कहते हैं । दूसरा पहलू है जो प्रमुख होकर भी हमें कम दिखाई देता है। उसे हम सार तत्व (essence) कहते हैं। हमें शरीर तो दिखाई देता है। पर आत्मा दिखाई नहीं देती। शरीर को यदि बेहतर समझना है तो आत्मा को समझना जरूरी है। इन दोनों चीज़ों में वैपरीत्य होते हुए भी सह–अस्तित्व है। अर्थात् विरोधी तत्वों की एक रूपता हर समय बनी रहती है। विपरीत तत्वों की एक रूपता का द्वंद्व ही समय को गति देता है।

आज के लोकतंत्र का कथ्य पूँजी केंद्रित व्यवस्था है। अर्थात् हमारा समाज वर्ग विभाजित है। मोटे तौर पर एक वर्ग सम्पन्न है। उसके पास अकूत धन की शक्ति है। हमें दिखाई भले न दे पर शासन तंत्र को धनिक ही अपनी इच्छानुसार चलाते हैं। अकूत धन–सम्पत्ति का आधार है– दूसरे के श्रम से भारी मुनाफा कमा कर वस्तु सृजित करने वाले श्रमी के श्रम का शोषण। हमें उत्पादन, अकूत सम्पत्ति का कुछ समूहों के हाथों में केंद्रित हो जाना विकास के रूप में (छायाप्रतीति) दिखाई देते है। पर मुनाफा कमा कर देने वाला श्रमिक, उसका अभावग्रस्त कठोर जीवन (सार तत्व) दिखाई नहीं देता। जो सामान्य आँखों को दिखाई नहीं देता या जो उसे देखना नहीं चाहती, उसे कवि अपनी संवेदनशील आँखें से देखता है। अपने हिये की आँखों (inward eye) से परखता है। उसे देखना परखना चाहिए। ऐसे वर्ग विभाजित तथा द्वंद्वमय समाज की केंद्रीय लय होती है वर्ग संघर्ष। सामाजिक अन्याय के प्रति जनाक्रोश।

लोकतंत्र का कथ्य लोक है। अर्थात् सामान्य – अतिसामान्य जन (सर्वहारा) की सत्ता तथा उसकी नीति निर्धारण में अर्थवान हिस्सेदारी। जो आज नहीं है। लोक के दो स्तर हैं। एक तो उसका सांस्कृतिक स्तर। दूसरा संघर्षपरक स्तर। अक्सर हमें उसका मनोरंजनकारी सांस्कृतिक स्तर– नाच,

गान, उत्सव, वेशभूषा, अंधविश्वास तो दिखता है। पर संघर्षधर्मी, विप्लवी रूप नहीं दिखता। भारतीय 'समकाल' की जड़ें हमारे मुक्ति संग्राम से जुड़ी हैं। 1857 की क्रांति, फ्रांस की क्रांति से कम महत्वपूर्ण नहीं है। उस क्रांति के मूल में एक समतामूलक समाज की स्थापना का संकल्प (vision) तथा साम्राज्यवाद विरोध अंतर्निहित हैं। किन्ही कारणों से वो संकल्प अभी तक पूरा नहीं हुआ। 'समकाल' के प्रत्येक कवि का महती दायित्व है कि उसे प्राप्त करने के लिए वह भारतीय संघर्षशील जनता से एकात्म होकर सघर्ष करे। उसके लिए जोखिम उठाए। लोक का उलट है भद्रलोक। इन दोनों में भी द्वंद्व है। संघर्ष है। प्रत्येक कवि को यह बताना पड़ता है कि उसका पक्ष क्या है ? जो चालाकी से तटस्थ रहने का स्वाँग करते हैं वे परोक्षतः सत्ता के साथ यथास्थिति का ही पोषण करते हैं। कवि की तटस्थता तथा निरपेक्षता का अर्थ है कि वह लोक विमुख है। शायद इसी संदर्भ में कवि की प्रतिबद्धता का प्रश्न खड़ा किया गया था। भारत का कोई भी बड़ा लेखक तटस्थ नहीं रहा। भक्त कवियों की भी उनके समयानुसार उनकी लोकोन्मुख प्रतिबद्धता स्पष्ट है। रीति कवि दरबार के लिए समर्पित थे। यही वजह है उनके साहित्य में संत कवियों जैसी न तो जीवन की व्यापकता है न गहराई। इसस यह भी ध्वनित है कि लोक विमुख होकर कोई साहित्य महान नहीं हो सकता।

भारतीय आर्थिकी की रीढ़ यहाँ का संघर्षधर्मी किसान है। किसान की सृजनशक्ति ही भारत की आत्मा है। ध्यान रहे लोक के केंन्द्र में संघर्षधर्मी किसान, श्रमी, अभावग्रस्त जन है। अतः उसे गाँव ,शहर, जनपद या क्षेत्रों में विभाजित करके नहीं देखा जा सकता। वह आज एक वैश्विक शक्ति है। महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने लोक के संघर्षधर्मी रूप को ही अपने सृजन के केन्द्र में रखा है। वह अपने समय के 'समकाल' को व्याख्यायित करते हैं। वह भारतीय मुक्तिसंग्राम की अग्रगामी प्रक्रिया को गति भी देते हैं वह सर्वहारा के पक्षकार हैं। निराला भी यही करते हैं। महाकवि निराला ने भारतीय मुक्ति संग्राम के सार तत्व को अपनी कविता 'बादल राग' में व्यक्त किया है-

हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार

तुझे (बादल को) बुलाते
पिप्लव रव से छोटे ही शोभा पाते
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक भवन

जीर्ण बाहु , है क्षीण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के बीर
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मास ही है आधार

समकाल को व्याख्यायित करते हुए निराला की बातें दृष्टव्य हैं। एक तो वे सामान्यजन (लोक) पर अधिक बल दे रहे हैं। दूसरे वे मुक्तिसंग्राम की प्रक्रिया को अग्रसर करने के लिए चिंतित दिखते हैं। तीसरे, ऊँची अट्टालिकाओं के रूप में जो वैभव हमें दिखाई देता है वह मनुष्य विरोधी धन का आतंक है। उनकी एक पंक्ति से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी- 'खुला भेद विजयी कहाए हुए है, लहू दूसरों का पिए जा रहे हैं।'

भारतीय श्रमशील कृषक की जिस दशा का वर्णन उन्होंने किया है वैसी स्थिति आज भी है । लाखों किसानों ने आत्महत्या कर आज के लोकतंत्र पर प्रश्न खड़ किया है! 'कविता के वर्तमान' को व्याख्यायित करने के लिए आज भी ये बातें जरूरी हैं। कई बार हमें लोक दबा-कुचला, शोषित-उत्पीड़ित तथा पस्त हिम्मत दिखता है। उसमें निहित जनशक्ति दिखाई नहीं देती। पर वह अदम्य शक्ति उसमें सदा अंतर्भूत है। नागार्जुन की पंक्तियों

से यह बात स्पष्ट होगी– 'खड़ी हो गई चाँप कर कंकालों की हूक, बाल न बाँका कर सका शासन की बन्दूक।'

कविता के वर्तमान को समझने के लिए यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक अनिवार्य शर्त है। दूसरे, हिंदी की वर्तमान या समकालीन कविता की यही मुख्य धारा भी है। जब भी हम 'समकाल' या 'वर्तमान' को कविता में बताएँ तो लोक में निहित इस अपार जनशक्ति को व्यक्त करना न भूलें। यह लोक की वह अदम्य अजेय शक्ति है जिसे कोई भी सत्ता बहुत समय तक दबा के नहीं रख सकती। शोषक सत्ता इससे भय खाती है। कोई भी बुनियादी परिवर्तन इसके बिना सम्भव नहीं है। इस जनशक्ति का एहसास हमें नागार्जुन, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन में होता है। कुमारेंन्द्र तथा कुमार विकल भी इस जनशक्ति का एहसास कराते हैं। मैं स्वयं अपनी कविता में लोक की इस अदम्य शक्ति का पक्षधर रहा हूँ। अपनी प्रदीर्घ लम्बी कविता 'जनशक्ति' (जनशक्ति, कविता संग्रह, सम्पादित, डा. कमला प्रसाद) में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। कविता के समकाल की यही मुख्य धारा है। 'औपनिवेशिक आधुनिकता' के प्रभाव के कारण आगे चलकर यह लोकधर्मी परम्परा किंचित कमजोर हुई है।

मेरी पीढ़ी के अन्य कवि चंद्रकान्त देवताले, भगवतरावत, ऋतुराज, मलय, विष्णुचंद्र शर्मा आदि में संघर्षशील लोकधर्मी परम्परा का विकास कुछ क्षीण बल हुआ लगता है। किसानों और श्रमिकों के संघर्ष धर्मी चित्र गायब हुए है। इसके बाद की पीढ़ी के कवि हैं ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी तथा अरुण कमल। वर्तमान में कुछ युवा कवि लोकधर्मी परंपरा को अग्रसर किये लगते हैं। इनमें प्रमुख है एकांत श्रीवास्तव, सुशील कुमार, केशव तिवारी, रमेश प्रजापति, प्रियंकर पालीवाल, महेशचन्द्र पुनेठा, सुरेश सेन निशांत, संतोष कुमार चतुर्वेदी, विजय सिंह, अरुणाभ सौरभ, भरतप्रसाद, आत्मा रंजन, रेखा चमोली आदि। एक अन्य बिल्कुल अनजान प्रतिभाशील कवयित्री का उदय होने को है। नाम है शहनाज इमरानी। उनका पहला कविता संग्रह, 'कच्चे रास्तों से' शीघ्र प्रकाश्य है। शहनाज़ अत्यन्त मौलिक, साहसी तथा लोकधर्मी कवयित्री है। उनकी कविता पढ़के मुझे अमरीकी कवयित्री एमिली डिकिन्सन की याद आती है। फर्क है इतना कि एमिली डिकिन्सन हर समय स्वर्ग और ईश्वर की बात करती हैं। पर शहनाज़ भयानक वर्तमान का सामना करने को तैयार है। उससे मुठभेड़ करती हैं। इसके अलावा अन्य बहुत सारे कवि लोकधर्मी अच्छी कविताएँ अपने अपने जनपदों में लिख रहे हैं। पर कविता को और अधिक ऊँचाइयों तक ले जाने के लिए इन सबको कठिन संघर्ष करना है। दूसरे, कविता में गहन चिंतन देने के लिए व्यापक तैयारी भी करनी होगी। उन्हें अपने तथा विश्व के महान क्लैसिक्स से गहरा संपर्क रखना बहुत जरूरी है।

मेरे विचार से जिस कविता में उपर्युक्त बातें व्यक्त होती हों वही कविता के 'समकाल' अथवा 'कविता के वर्तमान' को बता सकती हैं। समकालीनता तथा आधुनिकता के भी यही आधार हैं। बिना इन्हे व्यक्त किए न तो कवि समकालीन हो सकता है न आधुनिक। समकालीनता, वर्तमानता तथा आधुनिकता तिथि – काल से नहीं बल्कि हमारी विश्वदृष्टि से व्याख्यायित होती है। अतः एक ही समय में रचने वाले सभी कवि न तो समकालीन हो पाते हैं न आधुनिक। वे तत्कालीन भर बने रहते हैं। जबकि हमारे समय से पहले के अनेक कवि हमसे जुड़कर समकालीन से लगते हैं। जो सही अर्थ में समकालीन होता है वह अपने समय का अतिक्रम कर भविष्य का भी कवि बनता है।

जैसा मैंने कहा जब तक कवि अपने समय और समाज की छायाप्रतीतियों के साथ उसके सार तत्व को व्यक्त नहीं करता तब तक वह न तो समकालीन है न आधुनिक। समकालीन कवि में अपने समय

का केन्द्रीय वर्ग संघर्ष तथा जनशक्ति का एहसास कराने की क्षमता होना जरूरी है। लोकतंत्र में 'समग्र लोक' को अपना नायक बनाए बिना हम न तो समकालीन हैं। न आधुनिक। आज लोक विमुख जो आधुनिकता है वह' औपनिवेशिक आधुनिकता' है। उसने हमें अपनी जड़ों, जातीयता तथा जमीन से काट कर अकेला, निस्सहाय तथा कुंठित बनाया है। वह भारतीय आधुनिकता नहीं है। भारतीय आधुनिकता का प्रस्थान बिन्दु हमारा मुक्ति संग्राम है। उस में समतामूलक समाज की स्थापना तथा साम्राज्यवाद का प्रतिरोध प्रारम्भ से प्रमुखत: निहित है। इस लोकधर्मी परम्पर को विकसित तथा व्यापक बनाना आज के कवि का महता दायित्व है। जो कवि समाज और समय निरपेक्ष होकर यथास्थिति का पोषण करते हैं अथवा जो निर्विवेक विगतगामी हैं वे सच्चे अर्थ में समकालीन अथवा आधुनिक नहीं हो सकते। हिन्दी के प्रख्यात समीक्षक प्रो. रेवतीरमण की अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक, 'कविता में समकाल' की भूमिका में 'सर्वहारा संस्कृति' के सृजन का प्रमुख प्रस्ताव कर हमारा ध्यान उधर मोड़ा है। डा. जीवन सिंह, डा. आनंद प्रकाश तथा डा. रमाकांत शर्मा ने लोकधर्मी समीक्षा को नए आयाम दिए है। आज के कवियों को उन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

दूसरी प्रमुख बात है अपने प्रदीर्घ और समृद्ध अतीत को तर्क और विवेक से समझने की। कोई भी वर्तमान, समकाल या आधुनिकता बिना अपनी परम्परा को गहराई से आत्मसात किए नहीं समझे जा सकते। इस संदर्भ में ध्यान यह भी रहे कि कोई भी समय या काल प्रकृति शून्य नहीं होता। प्रकृति मनुष्य के लिए ऐसा सर्वोच्च वरदान है जिसके बिना हम एक क्षण भी जीने की कल्पना नहीं कर सकते। उसका सान्निध्य जीने के लिए जितना अनिवार्य है उतना ही कविता में व्यक्त होने के लिए भी। वह मात्र उद्दीपन का ही कारक नहीं है। बल्कि एक ऐसा मनुष्य स्वायत्त विराट आलम्बन (चरित्र) है जो हर प्रकार से हमारे जीवन को प्रभावित करता है। दूसरे, हर कवि का दायित्व है उसके अंध विदोहन और क्रूर विनाश का प्रतिरोध करे। हमारी पवित्र नदियाँ गटर, नालियाँ बन चुकी है। वनों, पर्वतो, झीलों को बेहिसाब नष्ट किया जा रहा है। पूँजीकेंद्रित व्यवस्था ने हमें मनुष्य और प्रकृति के प्रति अन्त:करण शून्य बना कर हमारी सौंदर्य संवेदना को ही नष्ट कर दिया है। मनुष्य और प्रकृति के बीच एक जैविक खाई (metabolic rift) पैदा हुआ है। प्रकृति हमारे जीवन्त परिवेश का अनिवार्य हिस्सा है। हम उसके विनष्ट किए जाने का कविता में प्रतिरोध करें। दूसरे, हम उसे अपनी कविता में संरक्षित भी करें।

इन सब बातों पर विचार करते हुए मुझे कविता का वर्तमान बहुत उत्साह वर्धक नहीं लगता। आज के अधिकांश युवा कवि फेसबुक के आदी होते जा रहे हैं। जितना समय वे फेसबुक में ज़ाया करते हैं उतना यदि अपने तथा विदेशी महान क्लैसिक्स, साहित्येतर ज्ञान तथा प्रकृति के अनुशीलन में लगाएँ तो उनकी कविता को नई ऊर्जा प्राप्त होगी।

मुझे प्रसन्नता है कि 'अपनी माटी' यह परिचर्चा करके अत्यन्त सार्थक पहल कर रही हैं और 'संवेदन' ने इसे प्रिंट फॉर्म में छापकर इस पहल को आगे ही बढ़ाया है। आज हिंदी काव्य साहित्य की ध्वनि है कि हम मध्यवर्गीय सीमाओं को तोड़ अपनी धरती के विशाल क्षेत्र को भी कविता में लाएँ। 'औपनिवेशिक आधुनिकता' से मुक्त हों। अपनी धरती, अपने लोग तथा अपनी जड़ों को पहचानें। अधिकांश वर्तमान कविता मध्यवर्गीय जीवन की व्याख्या तक ही सीमित रह गई है। वर्तमान कविता में श्रमशील कर्मठ किसान, श्रमिक, लकड़हारे, बुनकर तथा कठोर जीवन जीने वालें की मार्मिक छवियाँ लगभग गायब हैं। यानि समर्ग्र लोकधर्मिता का पक्ष दुर्बल होता जा रहा है। यह एक चिंता का विषय है। यह उस 'औपनिवेशिक आधुनिकता' का असर है जिसका

जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ। हमने अपने मुक्तिसंग्राम की स्मृतियों को धूमिल किया है। हमारे सरोकार–हमारी चिंताएँ–बहुत निजी और वैयक्तिक होती जा रही हैं। कविता में शब्द कौतुक तथा चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ी है। कोई बड़ा समीक्षक भी ऐसा नही जो अपने विराट व्यक्तित्व से सही दिशा की ओर प्रेरित कर इस प्रवृत्ति को मोड़ सके। जिन्हे हमने शिखर समझा था वे अवसरवादिता के कगार पर बैठ कर ढह चुके हैं। ज्योति स्तम्भ बुझ गए हैं।

मुझे अफसोस है आज कवि–आचरण के सवाल गौण हैं। कवि कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं है। न तो वह कोई चुनौती दे पा रहा है। न चुनौती स्वीकारता है। कविता के लिए जो अटूट और गहरा समर्पण चाहिए वह नहीं दिखता। कविता एक बड़ी साधना की अपेक्षा करती है। बड़े त्याग चाहती है। वह एक ऐसा जीवन यज्ञ है जिसमें हर साँस की आहुति देनी पड़ती है। जबकि हमारा कवि छोटी छोटी लालसाओं को समझौते करता दिखता है। दिल्ली में लगी पुरस्कार प्रदर्शनी की ओर ही उसकी दृष्टि अधिक है। जो पुरस्कार दिला सकते हैं उनकी गलत बातों को भी सही बताकर हम अपनी आत्मा को कमज़ोर करते हैं। यह एक ऐसा कुचक्र है जो हमारे कवि को रीढ़हीन बनाता है। कविता जैसे एक व्यवसाय हो। विश्वविद्यालय में कार्यरत अधिकांश हिंदी कवि अपनी पदोन्नति के लिये चिंतित दिखते हैं। पदोन्नति और पुरस्कार हमें समझौतों को विवश करते हैं। यही कारण है कविता में सामाजिक अन्याय, उग्र होते साम्राज्यवाद तथा क्रूर होती पूँजी–व्यवस्था के प्रति न तो दिशा सूचक शक्तिशाली विद्रोह है। न तीखा प्रतिरोध। लगता है सब कुछ सामान्य है। यही वजह है कविता जनसमुदाय से दूर होती जा रही है। उसकी व्यापक अपील दिनों दिन घट रही है। उसका प्रभाव क्षीण बल है। आचार्य मम्मट ने कविता के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रयोजन, 'शिवेतर क्षतये' अर्थात् अमंगल तथा जन विरोधी प्रवृत्ति के विनाश की बात कही है। इस दृष्टि से समाज को सुन्दर बनाने के लिए कविता एक अस्त्र का काम कर सकती है। आज उसकी बहुत जरूरत है। मैं उस सामान्य स्थिति की बात कह रहा हूँ जिससे 'कविता के वर्तमान' या 'कविता के समकाल' का एक व्यापक परिदृश्य उभरता है। अपवाद स्वरूप कुछ विरल कवि है जो अपना दायित्व गंभीरता से निभा पा रहे हैं। उन्हें हाशिए पर धकियाने की मुहिम तेज़ है। आज साहित्य में एक बार फिर बहुत बड़े 'बुनियादी पुनर्जागरण' की जरूरत महसूस हो रही है।

सुमन केशरी (वरिष्ठ कवयित्री)

आइंस्टाइन ने सापेक्षता के सिद्धांत के संदर्भ में कहा था कि 'प्रकाश की रेखा पर बैठ कर यात्रा करते हुए यह जगत दिखने में कैसा लगेगा'? इससे तेज गति की कल्पना संभव नहीं! इक्कीसवीं शताब्दी के बारे में सोचते हुए लगता है कि मानव सभ्यता प्रकाश की गति से ही आगे बढ़ रही है– सब कुछ उलट–पलट करती हुई सी ! हर चीज को देखने का नजरिया बदल रहा है– वस्तु से लेकर भावबोध तक का। अब लगता है कुछ भी दूर नहीं– हाथ बढ़ाते ही कुछ भी मिल जाने की संभावना इतनी बढ़ गई है कि मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों– अब पकड़ की हद में है– पानी में छाया रूप में नहीं बल्कि उस चंद्रमा पर चलना– उसे रौंदना तक अब

संभावना की हद में है और यहीं से शुरू होती है इक्कीसवीं सदी में लेखन की चुनौतियाँ भी और खतरे भी।

यह समय इतनी विकट जटिलताओं से भरा हुआ है कि उसे समझने और पकड़ने के लिए बाइनरी जैसे सरलीकरणों का उपयोग किया जा रहा है। यह बात समाज के लगभग हर क्षेत्र में दिखाई पड़ रही है और यही कारण है कि लोगों में दूसरे की सोच के प्रति गहरी असहिष्णुता और चिढ़ निरंतर बढ़ रही है। मेरी दृष्टि में साहित्य इन्ही स्थितियों के समग्र अनुशीलन का प्रयास है। वह मानव मन को जटिलताओं को समझने की राह दिखाता है और उससे जूझने का हौसला देता है। भावबोध के स्तर पर साहित्य मनुष्य की मूलभूत मनुष्यता को बचाए रखने का लगभग एकमात्र उपाय है क्योंकि शब्द अंततः निराशा के अंधकार में संवाद के माध्यम से आशा के प्रकाश बिंदु रचते हैं।

डॉ.राजेन्द्र सिंघवी (युवा समीक्षक)

साहित्य की सबसे महीन विधा 'कविता' है। कविता का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ माना जाता है, इसी कारण कविता को मनुष्यता की मातृभाषा कहा गया है । कविता की आलोचना मनुष्यता के घेरे में ही संभव है, किंतु उसकी मौलिकता समय के साथ निरूपित होती है। बीसवीं सदी का अंतिम दशक और इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक सामयिक यथार्थ की दृष्टि से नितान्त भिन्न है । वर्तमान समय भूमंडलीकरण का है, जिसके साथ साम्राज्यवादी शक्तियों का मानवीय जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश हो गया है । ऐसी स्थिति में इस समय की कविता का यथार्थ स्पष्ट होना आवश्यक है ।

विस्मयकारी यथार्थ को प्रभावित करने वाले जो कारक पहले दशक में उपस्थित होते हैं, वे हैं- वैश्वीकरण, मुक्त बाजारवाद, विकृत उपभोक्तावाद, राजनीतिक अधिनायकवाद, मूल्यों का विघटन, संस्कृतियों का संघर्ष, पूंजीवाद का प्रभुत्व एवं भ्रष्ट आचरण आदि। ये कारक तो वैश्विक हैं, किंतु भारत का आम आदमी इनकी फाँस में आ गया है । दूसरी ओर भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का पतन, जातीय व धार्मिक उन्माद, साहित्य जगत में वैचारिक अतिवाद के साथ वामपंथी- दक्षिणपंथी खेमे में बँटकर कवि कर्म के उद्देश्यों से भटकाव का साक्षी भी यह दशक है । सुखद पहलू यह है कि इस बीच स्त्री व दलित को कविता के केन्द्र में रखा गया है, जो वैचारिक स्तर पर संघर्ष करते हुए अपना मुकाम तय करते हैं ।

पहले दशक की उल्लेखनीय कृतियों में ज्ञानेन्द्रपति की 'गंगातट', 'संशयात्मा', विष्णु खरे की 'काल और अवधि के दरमियान', अशोक वाजपेयी की 'इबारत से गिरी मात्राएँ', संजय पंकज रचित 'यवनिका उठने तक', अनूप सेठी कृत 'जगत में मेला', श्रीप्रकाश शुक्ल की 'जहाँ सब शहर नहीं होता', वीरेन डंगवालकी 'दुष्चक्र में स्रष्टा', कुमार अंबुज कृत 'अतिक्रमण', हेमंत कुकरेती रचित 'नया बस्ता', यतीन्द्र मिश्र लिखित 'ड्योढ़ी पर आलाप', कुमार वीरेन्द्र की 'विलाप नहीं', राजेश जोशी रचित 'चाँद की वर्तनी', मदन कश्यप कृत 'कुरूज' आदि महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें विवेचित यथार्थ का चित्रण मिलता है ।

यह संक्रमणकालीन वेला है, जहाँ पुराने सामाजिक मूल्य विघटित हो रहे हैं और नये मूल्यों को स्वीकृति नहीं मिल पा रही है । कवि समाजशास्त्री

बनकर अपने रास्ते बना रहा है, जो व्यवस्था को चुनौती देता है, राजनीतिक पथ को भी वैचारिक आधार प्रदान करता है और अनुकूल व्यवस्था को निर्मित होने तक चुप नहीं बैठता । दशक के उत्तरार्द्ध में आते-आते कवि व्यवस्थागत विद्रूपताओं के प्रति मात्र आक्रोश व्यक्त कर चुप नहीं रहता, बल्कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए मुखर हो जाता है । सोशल मीडिया के माध्यम से वह 'एक्टीविस्ट' की भूमिका में दिखाई देता है जो जीवन की विषमताओं को मानवता के केन्द्र में खींचकर चर्चा करता है और लेखनी में इतना पैनापन आ गया है कि राजनीतिक व्यवस्थाएँ भी कविता के संकेतों से प्रभावित होने लग गई है ।

अशोक कुमार पाण्डेय
(कवि, लेखक, अनुवादक और अब प्रकाशक)

कविता का वर्तमान या फिर वर्तमान की कविता? या सवाल यह कि वर्तमान में लिखी जा रही कविता अपने समय को कितना अभिव्यक्त कर पा रही है और कितना प्रभावित. मेरे लिए तो यही सवाल ज़रूरी है. असल में किसी भी काल की कविता कोई मोनोलिथ नहीं होती. हर काल में अलग अलग धाराओं और प्रवृतियों की कवितायें लिखी जाती रही हैं, और लिखी जाती रहेंगी. हाँ उनके बीच से एक तरह का स्वर महत्त्वपूर्ण या प्रभावी बन कर उभरता है. यही उस काल का प्रतिनिधि स्वर बन जाता है.

हिंदी कविता के साथ यह तो रहा ही कम से कम कि आज़ादी की लड़ाई के दौरान और उसके बाद भी जिस तरह की कविता मुख्यधारा में स्थापित हुई उसे मोटा मोटी हम जनपक्षधर धारा कह सकते हैं. इसका एक हिस्सा वामपंथ से प्रभावित कवियों का रहा तो साथ ही साथ लोहियावाद सहित अन्य विचारों से प्रभावित कवि रहे जो साम्प्रदायिकता तथा आमजन के दुखो कष्टों के खिलाफ़ और सत्ता के दमन के प्रतिकार में खड़े हुए. यह हमारी गौरवशाली परम्परा है जो एकरंगी नहीं है.

आज की कविता के बारे में सीधे सीधे कुछ कह पाना आसान नहीं है. नब्बे के दशक में लागू हुईं आर्थिक नीतियों का सामाजिक राजनीतिक प्रभाव साहित्य तक आना ही था. सोवियत संघ के पतन ने भी माहौल को गहरे प्रभावित किया. एक तरह की अफरातफरी स्पष्ट दिखाई देती है. लेखक संगठन दिन ब दिन अप्रासंगिक होते गए. इन सब का प्रभाव कविता के कथ्य और शिल्प पर पड़ना ही था. एक तरफ तो इस दौर में शिल्प के अनेक प्रयोग देखे गए तो दूसरी तरफ कथ्य धुंधलाया भी और आवाज़ क्षीण भी हुई. लेकिन इसके साथ यह भी हुआ कि कविता के क्षेत्रफल का विस्तार हुआ. यह सवर्ण हिन्दू पुरुषों के एकाधिकार से बाहर निकल महिलाओं, आदिवासियों और दलितों तक पहुँचा और इन नयी आवाजों ने कविता के शिल्प को तोड़ा है तो कथ्य को बदला भी है. इस तरह जो नई तस्वीर बन रही है मैं तो उसे बेहद उम्मीद से देखता हूँ, हालाँकि इस पर विस्तार से और गहनता से तो कुछ वक़्त बाद ही देखा जा सकेगा.

('अपनी माटी' वेब पत्रिका से साभार)

रमाकान्त श्रीवास्तव

वरिष्ठ आलोचक।
संपर्क- एल.एफ. 1, कनक रिट्रीट, ई-218, त्रिलंगा, भोपाल, म.प्र. पिन- 462039
ईमेल - ramakantshrivastava3@gmail.com

समकालीन कहानी : कुछ बिन्दु

समकालीनता एक विशेष कालखंड का द्योतक है उसे लेखकों सम्पादकों द्वारा अपने-अपने हिसाब से तय किए गए युवाओं की एक-डेढ़ दशक की सद्य प्रकाशित रचनाओं में परिघटित करना उतना ही अनुचित है जितना कि कहानी की केंद्रीयता का विवादास्पद जुमला। कहानीकारों की तीन पीढ़ियां सक्रिय हैं और कविता के क्षेत्र में भी सक्रियता है। और उन्हें भी पाठकों द्वारा पढ़ा जा रहा है। युवा पीढ़ी उसे भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती है। साहित्येतिहास में रचनारत पीढ़ियों के लेखकों को समय के प्रहारों और समस्याओं का सामना समान रूप से करना पड़ता है। वर्तमान समय में कहानीकार के सामने समस्याएं कुछ होंगी और कवि के समक्ष कुछ और, यह सोचना ही मतिभ्रम है। पीड़ाएं त्रास और स्वप्न पूरे काल खंड के अंतर्मन की धड़कनों के रूप में कलानुशासनों में ध्वनित होते हैं। आज का लेखक किसी भी विधा में लिखे उसका सामना भूमंडलीकृत बाजार के अमानवीय स्वार्थ धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद, वर्ग लिंग तथा वर्णगत शोषण और विषमता के मूल कारण पूंजीवादी व्यवस्था से ही होता है। ये समस्याएं केवल युवा वर्ग की नहीं, समकालीन लेखक की भी है। युवा लेखक समकालीन परिदृश्य का उभरता हुआ सृजनधर्मा है। वह समय की गति के बीच युवा है। हिन्दी कहानी में प्रतिभा का विस्फोट नहीं हुआ है। जैसा कि कुल लेखकों और सम्पादकों ने मान लिया है कि बल्कि विकास हुआ है।

बेशक कहानियों का खूब प्रकाशन हो रहा है किंतु पाठकों की संख्या में इससे इजाफा किया हो, ऐसा लगता नहीं है। इसके बरक्स सामान्य पाठक कई बार एक जैसे होते जा रहे उसके पाठ से ऊबने की शिकायत भी करते हुए देखे जा सकते हैं। समकालीन कहानी में तीन पीढ़ियों के लेखक सृजनरत हैं। ऐतिहासिक दबाव का सामना करने और नये शिल्प को पाने

की जद्दोजहद हर काल में रही है। इतना ही नहीं, जिन लेखकों का रचना काल कुछ दशकों तक फैला है, उन्होंने भी अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किया है और इसके विपरीत यह भी देखने में आता है कि नव्यता के अति उत्साह में कुछ युवा लेखक अपनी ही शैली के दुहराव के शिकार होकर अल्प अवधि में ही पुराने यानी मोनोटोनस हो गए। हिन्दी कहानी के समकालीन परिदृश्य में दोनों ही तरह के उदाहरण आसानी से देखे जा सकते हैं। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों के समय को केंद्र में रखकर यदि हम विचार करें तो हजारों प्रकाशित कहानियों में से अच्छी कहानियों की एक लंबी सूची बन सकती है। सूची हमेशा अधूरी और काल चलाऊ होती है। अतः सूची में आप अपनी ओर से भी नाम जोड़ लें। विमर्शों में बांटकर कोई सूची बनाने के पक्ष में मैं नहीं हूं। मैं विभिन्न पीढ़ियों के लेखकों की कुछ कहानियों का उल्लेख कर रहा हूं। यह सूची श्रेष्ठता का मानदंड भी नहीं है, केवल दृष्टांत स्वरूप है। जहां तक मेरी पसंदीदा कहानियों का प्रश्न है, उनकी सूची बहुत लंबी है। उसमें से कुछ नाम में यह प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं कि नई रचनाएं प्रतिभा का विस्फोट नहीं हैं।

मैंने अभी-अभी वरिष्ठतम पीढ़ी के कथाकार दूधनाथ सिंह की कहानी पढ़ी अतः उदाहरण स्वरूप उनकी कहानी 'क्या करूं साबजी' को ही रखता हूं। लुप्त होती नस्ल (काशीनाथ), कुइयांजान (नासिरा शर्मा), बदली तुम हो साबिया (नमिता सिंह), पार्टीशन (स्वयं प्रकाश), छछिया भर छाछ (महेश कटारे), आरोहण (संजीव), त्रिशूल (शिवमूर्ति), बाजार में रामधन (कैलाश वनवासी), नाम में क्या रखा है (हरि भटनागर), कैमरे की आंख (आनंद हर्षुल), आवर्त दशमलव (सुबोध कुमार), जोग (कुंदन सिंह परिहार), सवर्ण देखता दलित देवता (हरनोट), जनु खसेऊ (श्याम कश्यप), बेचैन पुल(लेखक का नाम याद नहीं), अंधेरा (अखिलेश), वारेन हेस्टिंग्ज का सांड (उदय प्रकाश), साज नासाज (मनोज रूपड़ा), मर्सिआ (योगेंद्र आहूजा), भरोसे की बहन, उन्नीस साल का लड़का (शशांक), जंगल(भालचंद जोशी), सिर्फ एक कौवा (कुमार अंबुज), नालंदा पर गिद्ध (देवेंदर), सनातन बाबू का दाम्पत्य (कुणाल सिंह), रहगुजर की पोटली (अल्पना मिश्र), परिन्दे का इंतजार सा कुछ (नीलाक्षी), यस सर (अजय नवरिया), सिनेता के बहाने (वंदना राग), सिटी पब्लिक स्कूल(चंदन पांडेय), फाव की जमीन (प्रभात रंजन), पांच का सिक्का (असफल), जैसी कहानियां समकालीन हिन्दी कहानी की समृद्धि की एक झलक देती हैं।

1980 के बाद देश में जो नई आर्थिक नीति आई उसने उपभोक्तावाद और विषमता को खतरे की जद तक पहुंचाया। नक्सलपंथी आंदोलन, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श के प्रभाव से जिस गुस्से और आक्रोश ने हिन्दी कहानी में प्रवेश किया उसने मध्यवर्गीय जीवनानुभवों के वृक्ष से कहानी को बाहर निकाला। 1990 तक भूमंडलीकरण बाजारवाद ने भारतीय समाज को इस कदर अपने शिकंजे में जकड़ा कि राजनीति, अर्थनीति, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि धर्म सभी कारपोरेट जगत के इशारे पर नाचने लगे। देश की परिस्थितियों और जनमानस में विशेष रूप से युवा मानस में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ। 1992 का काला अध्याय अविस्मरणीय है। नई सदी की सामाजिक सांस्कृतिक गतियां बीसवीं सदी की परिस्थितियों का विकास है। कारपोरेट जगत असीम शक्ति हासिल कर चुका है। आधुनिकता और पश्चिमीकरण की अवधारणाएं गड्ड-मड्ड हो गई हैं। अमानवीय चरित्र की सरकारें अपनी प्रशंसा के गीत खुद गा रही हैं। इस भाषायी समय को चित्रित करना आसान नहीं है। किंतु हिन्दी कहानी ने उसे चित्रित करने की कोशिश की अतः इसके क्षितिज का विस्तार हुआ। नये भाषाई मुहावरे और

शिल्प ने कहानी को नया स्वरूप प्रदान किया। किंतु इस चमकदार शिल्प की अपनी सीमाएं हैं। जहां तक मूल्यों का प्रश्न है समकालीन कहानी ने उसका दामन नहीं छोड़ा है। युवा लेखकों की कहानियां में भी बाजारवादी प्रवृत्ति से असहमति, धर्मान्धता, कट्टरता का विरोध, वर्ण जाति के कारण उत्पन्न उलझनों का चित्रण है। सेक्स के वर्जित माने जाने वाले क्षेत्रों की स्थितियों को कहानी विधा में शामिल किया कारपोरेट क्षेत्र से जुड़े यथार्थ चित्रण कहानी में देखे जा सकते हैं किंतु शिल्प की चमक और अनावश्यक विस्तार को शैली की नवीनता मानने के भ्रम के शिकार युवा ही नहीं, वरिष्ठ कथाकार भी हो रहे हैं। यह रोग तो पहले से ही विद्यमान रहा है कि लंबी कहानी को ही उपन्यास के रूप में प्रकाशित करवा लिया जाय। पत्रिकाओं ने पहले से ही लंबी कहानी जैसा एक वर्ग बनाकर उसे अतिरिक्त महत्व देकर विशिष्टता प्रदान की। इसके अलावा कुछ सम्पादकों ने कथ्य और संवेदना से अधिक भाषा की चमक को नयेपन के रूप में स्थापित करने का काम किया। कई पृष्ठों की लंबी कहानी में दृष्टांत पर दृष्टांत पेश करना ही नवीनता है। बहुस्तरीयता के भ्रम में भाषा के चमत्कार के साथ स्थितियों के अतिरिक्त उलझाव को संश्लिष्टता मान लेना कितना सही है? शंभु गुप्त ने अपने लेख 'वे हमें देख रहे हैं' में राजी सेठ को उद्धृत किया है– अभिव्यक्ति के लिए जो रास्ता इन कथाकारों ने अपनाया है वह पहले की तरह भावपक्ष पर नहीं, संरचना में ही सब कुछ समेट-गढ़ लेने का है। यहां अनुभव मुख्य नहीं, अनुभव को प्रस्तुत करने वाली बौद्धिक रीति और चुस्ती प्रमुख है। चुस्ती का भरम तो तभी टूट जाता है जब कहानी रूपकों, बिम्बों, प्रतीकों, सूचनाओं, मिथकों, वक्तव्यों में उलझने लगती है। एक 'कम्पोजिट कोलॉज' बन जाती है। यहां दो बिन्दु विचारणीय हैं। पहला यह कि जिन कथाकारों ने उदय प्रकाश को आदर्श मानकर उनके जैसा ही पाठ रचने का प्रयास किया है वे बहुत जल्दी दुहराव की चपेट में आ गए हैं। उदय प्रकाश जैसे महत्वपूर्ण कथाकार का प्रभाव स्वाभाविक है किंतु उनकी शैली की नकल करके उदय प्रकाश नहीं बना जा सकता। दूसरा यह कि युवा कहानी परिदृश्य में जिन प्रतिभाशाली लेखकों को महत्व दिया गया है उनमें एकजैसापन जल्दी ही उभरकर सामने आ गया। रचना को नहीं, बल्कि कुछ नामों को ही विशिष्ट मान लिये जाने पर और क्या होगा। मेरी दृष्टि में समकालीन कहानी का एक शुभ लक्षण है कथा की वापसी। काशीनाथ, महेश कटारे हों या नीलाक्षी सिंह, उमाशंकर और प्रभात रंजन इनकी रचनाओं में किस्सागोई उपस्थित है। नई कहानी के दौर से ही कथा रस तरल हो गया था। आज की अधिकांश कहानियां पाठकों से सीधे संबोधित हैं। जहां कहानी इंटरनेटीय विवरणों और आंकड़ों में उड़ने लगती है वहां कथारस भी व्यर्थ होकर उबाऊ हो जाता है। यहां तक कि आख्यान का नवीन व्यक्तित्व भी शिल्प के मोह में बिखरने लगता है। समकालीन कथा परिदृश्य में ऐसा कथाकार तलाशना शायद असंभव है जो आत्मा और मस्तिष्क से रूढ़िवादी या प्रतिक्रियावादी हो। सारी दिक्कत आख्यान रचते हुए भी शिल्प के स्तर पर भी नया दिखने योग्य ही है। सामान्य बात के लिये शब्दाडम्बर का संभार और बौद्धिकता का गैरजरूरी तड़का बुद्धिजीवियों को उबाने के लिये काफी है। सामान्य पाठक की तो बात ही छोड़िये। कोई भी पीढ़ी प्रतिभा से हीन नहीं होती अतः प्रश्न पीढ़ी का नहीं, जिसकी समय सीमा कुछ लेखक कों-सम्पादकों-समीक्षकों ने अपनी सुविधानुसार तय की है। प्रश्न अन्तर्वस्तु की सार्थकता और कलात्मकता के सूक्ष्म रेशों की है। बेशक वैचारिक-सामाजिक आंदोलनों को समय की तासीर ने काफी हद तक कमजोर कर दिया है, किंतु वैचारिक-सामाजिक दृष्टि आज भी हिन्दी कहानी से बहिष्कृत नहीं हैं।

सोशल मीडिया और आधी आबादी के सरोकार

आकांक्षा यादव

जन्म 1982
शिक्षा- एम. ए. (संस्कृत)।
कॉलेज में प्रवक्ता के बाद साहित्य, लेखन और ब्लागिंग के क्षेत्र में प्रवृत्त। सोशल मीडिया, नारी विमर्श, बाल विमर्श और सामाजिक मुद्दों से सम्बंधित विषयों पर प्रमुखता से लेखन।
संपर्कः
टाइप 5, निदेशक बंगला, जी.पी.ओ. कैम्पस, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद (उ.प्र.) 211001
ई-मेलः
kk_akanksha@yahoo.com

संचार क्रांति के इस युग में सोशल मीडिया एक मजबूत स्तंभ के रूप में उभरा है। तकनीकी विकास के साथ-साथ सोशल मीडिया दिन-प्रतिदिन लोकप्रियता के शिखर पर चढ़ रहा है। राजनीति से लेकर, व्यापार, आम आदमी से लेकर ऊँची हस्तियाँ, साहित्य से लेकर पत्रकारिता, सामाजिक कार्यकर्ताओं से लेकर सरकार तक सभी ने सोशल मीडिया को अनिवार्य अंग के रूप में अपनाया है। आज सोशल मीडिया सामाजिक जीवन का दर्पण बन चुका है। तमाम सोशल वेबसाइट्स सिर्फ मनोरंजन और सामाजिकता निभाने तक ही नहीं बल्कि क्रांति तक का हथियार बन चुकी हैं। अरब देशों में हुई क्रांति से लेकर भारत में अन्ना हजारे के आंदोलन की बात हो या फिर दिल्ली में 'दामिनी' के साथ हुए गैंगरेप के विरूद्ध जनाक्रोश हो इन सारी घटनाओं में सोशल मीडिया ने बेहद अहम भूमिका निभाई है। बेबाक अभिव्यक्ति के रूप में सोशल मीडिया एक ऐसा अचूक अस्त्र बन चुका है, जिसका सकारात्मक इस्तेमाल करने पर समाज को नई दिशा तक दी जा सकती है। इसने एक तरफ 'सूचनाओं के लोकतंत्रीकरण' को बढ़ावा दिया है, वहीं सोशल मीडिया के माध्यम से समाजिक व्यवहार और संवाद के तौर तरीके भी बदलते नजर आ रहे हैं।

सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है कि, "यह इंटरनेट आधारित अनुपयोगों का एक ऐसा समूह है जो प्रयोक्ता-जनित सामग्री के सृजन और आदान-प्रदान की अनुमित देता है।" यह एक ऐसे आभासी संसार का निर्माण करता है, जहाँ व्यक्ति भौतिक रूप से मौजूद न रहकर भी अपनी आवाज बुलंद कर सकता है। सोशल मीडिया नेटवर्क ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का रूप बदल दिया है। लैपटाप, टेबलेट, मोबाईल फोन, स्मार्टफोन और आईपैड्स ने इसे और भी सर्वसुलभ बना दिया है। फेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस, लिंक्इडन, आरकुट, मायस्पेस जैसी सोशल नेटवर्किंग

साइट्स का अंतर्जाल व्यक्ति की सोच, समझ, दृष्टिकोण, वैचारिकता व समाजिकता को नए आयाम दे रहा है।

सोशल मीडिया ने समाज के विभिन्न वर्गों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित किया है। पहले जिस आनलाइन दुनिया को फैंटेसी और तकनीकी कल्पना की दुनिया माना जाता था, अब वह जीवंत और एक दूसरे से संवाद करने वाली दुनिया के तौर पर विकसित हो रही है। इसे न्यू मीडिया के एक प्रभावी माध्यम के तौर पर देखा जा रहा है। भारत में इंटरनेट प्रयोक्ता करीब 11 करोड़ हैं और इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन आफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार भारत में सोशल मीडिया का सक्रियता से उपयोग करने वालों की संख्या 6 करोड़ 60 लाख है। इनमें 64 प्रतिशत प्रयोक्ता 8 मेट्रो शहरों में, 24 प्रतिशत प्रयोक्ता 2 लाख से कम आबादी वाले कस्बो में और 11 प्रतिशत प्रयोक्ता अन्य छोटे कस्बों में हैं। सोशल साइट्स में भी 'फेसबुक' प्रमुख वेबसाइट है जिसे भारत में सभी सोशल मीडिया प्रयोक्ताओं के 97 प्रतिशत द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। सोशल मीडिया पर निगरानी रखने वाली साइट सोशल बेकर्स के अनुसार पूरी दुनिया में फेसबुक पर एक अरब से ज्यादा लोग हैं और भारत में 6 करोड़ 38 लाख लोग फेसबुक पर सक्रिय हैं। ट्विटर के 20 करोड़ के प्रयोक्ताओं के सापेक्ष भारत में 3 करोड़ 30 लाख प्रयोक्ता ट्विटर पर सक्रिय हैं।

इंटरनेट ने नारी स्वातंत्र्य व नारी सशक्तीकरण को नये मुकाम दिये हैं। इसके माध्यम से न सिर्फ वे एकजुट हो रही हैं बल्कि अपनी क्षमताओं को भी बखूबी पहचान रही हैं। नारी सशक्तीकरण सिर्फ एक अमूर्त अवधारणा नहीं है बल्कि इसका अर्थ है कि नारी संबंधी समस्याओं की पूरी जानकारी के लिए उनकी योग्यता व कौशल में वृद्धि कर सामाजिक एवं संस्थागत अवरोधों को दूर करने का अवसर प्रदान करना, साथ ही आर्थिक व राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारियों में बढ़ावा देना ताकि वे अपने जीवन की गुणवत्ता में व्यापक सुधार ला सकें। ऐसे में इंटरनेट स्त्री आन्दोलन, स्त्री विमर्श, महिला सशक्तिकरण और नारी स्वातंत्र्य के हथियार के रूप में उभरकर सामने आया है। यहाँ महिला की उपलब्धि भी है, कमजोरी भी और बदलते दौर में उसकी बदलती भूमिका भी।

हाल ही में गूगल इंडिया द्वारा किए गए महिला एवं वेब अध्ययन के मुताबिक भारत में तकरीबन 15 करोड़ लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं। इनमें से 40 प्रतिशत अर्थात छह करोड़ महिलाएँ हैं। ये सभी अपने दैनिक जीवन में इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं और अपने काम निपटाने के लिए ऑनलाइन रहते हैं। अध्ययन के अनुसार इंटरनेट पर भारतीय महिलाएँ सबसे अधिक वेशभूषा और सजने संवरने के लिए गहनों की तलाश करती हैं। इसके अलावा खानपान, बच्चों की देखभाल, केश साज सज्जा और त्वचा स्वस्थ रखने के तरीके ढूंढ़ती है।

अध्ययन के अनुसार इंटरनेट से भारतीय महिलाओं का सशक्तीकरण बढ़ा है। इससे उनकी जानकारी में बढ़ोत्तरी हुई है और जानकारी तक पहुँच बनी है। वे दिन प्रतिदिन के जीवन के बारे में सही और व्यापक परिप्रेक्ष्य में निर्णय ले पा रही हैं। इंटरनेट की उपलब्धता सर्वत्र बढ़ रही है। घर, साइबर कैफे और कार्यालयों में इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ रहा है। इसके अलावा मोबाइल फोन पर भी इंटरनेट का इस्तेमाल होता है। उनका इस्तेमाल सही और मनपसंद उत्पाद का चयन करने के लिए किया जाता है। अध्ययन में कहा गया है कि इंटरनेट इस्तेमाल करने वाली महिला अपेक्षाकृत युवा और आत्मनिर्भर हैं।

इंटरनेट पर महिलाएं सोशल मीडिया का खुलकर इस्तेमाल कर रही हैं। आंकड़ों पर गौर करें तो स्थिति स्वतः स्पष्ट हो जाती है। फेसबुक पर 40

फीसदी पुरूषों के सापेक्ष 60 फीसदी महिलाएं, ट्विटर पर 43 फीसदी पुरूषों के सापेक्ष 57 फीसदी महिलाएं एवं पिंटररेस्ट पर 31 फीसदी पुरूषों के सापेक्ष 68 फीसदी महिलाएं मौजूद हैं। गूगल प्लस व लिंक्डइन पर पुरूष क्रमशः 63 व 55 फीसदी व महिलाएं 37 व 45 फीसदी हैं। महिलाएं सोशल मीडिया के माध्यम से तमाम अनछुए पहलुओं पर सवाल पूछ रही हैं। हाल ही में फिक्की महिला संगठन को संबोधित करते हुए गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी स्वीकार किया था कि सोशल मीडिया के जरिये महिलाओं ने उनसे सवाल पूछे थे और तमाम सुझाव भी दिए थे। उन्होंने कहा कि इसके चलते उन्हें मुद्दों को समझने व उन पर भाषण तैयार करने में काफी सहूलियत हुई।

आज महिलाओं से जुड़ी तमाम वेबसाइट्स और ब्लाग सक्रिय हैं, वहीं फेसबुक पर भी व्यक्तिगत प्रोफाइल के अलावा तमाम पेज व ग्रुप महिलाओं को समर्पित हैं। यहाँ अल्हड़पन है तो गंभीरता भी। महिलाओं की शिक्षा, कैरियर, स्वास्थ्य, कन्या भ्रूण हत्या, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, दहेज, खान-पान, संगीत, ज्योतिष, धार्मिक विश्वास से लेकर राजनैतिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य, भ्रष्टाचार, मंहगाई, पर्यावरण, इत्यादि जैसे तमाम मुद्दे यहाँ पर चर्चा का विषय बनते हैं। यहाँ पर खुलेपन की बातें हैं तो सीमाओं का एहसास कराते संस्कार भी हैं।

सोशल मीडिया ने महिलाओं को खुलकर अपनी बात रखने का व्यापक मंच दिया है। तभी तो इनका दायरा परदे की ओट से बाहर निकल रहा है। इनमें प्रशासक, डाक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, विद्यार्थी, पर्यावरणविद, वैज्ञानिक, शिक्षाविद्, समाजसेवी, साहित्यकार, कलाकार, संस्कृतिकर्मी, रेडियो जाकी से लेकर सरकारी व कारपोरेट जगत तक की महिलाएं शामिल हैं। कामकाजी महिलाओं के साथ-साथ गृहिणियां भी इसमें खूब हाथ आजमा रही हैं। वे अपनी भाषा में अपने अंदाज में अपनी बात कह रही हैं। घरेलू मुद्दों से लेकर सामाजिक, राजनैतिक मुद्दों पर प्रखरता से की-बोर्ड पर अंगुलियाँ चला रही हैं। कई अग्रणी महिला ब्लागर्स और सोशल मीडिया एक्टविस्ट इस प्लेटफार्म के माध्यम से अपनी अलग पहचान स्थापित कर रही हैं। घर में रहने वाली महिलाएं सोशल मीडिया को एक ऐसे मंच के रूप में प्रयुक्त कर रही हैं, जहाँ विभिन्न विधाओं में उनकी अभिव्यक्तियाँ प्रस्फुटित हो रही हैं। छंदबद्ध काव्य, गीत, गजल, हाइकु, क्षणिका, अतुकांत कविताएँ, लघुकथा, कहानी, लेख, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, प्रेरक प्रसंग, पुस्तकों की समीक्षा से लेकर तमाम जाने-अनजाने पहलुओं से महिलाएं सोशल साइट्स को समृद्ध कर रही हैं। ये महिलाएं अपने अंदाज में न सिर्फ सोशल साइट्स पर सहित्य-सृजन कर रही हैं बल्कि तमाम राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक मुददों से लेकर घरेलू समस्याओं, नारियों की प्रताड़ना से लेकर अपनी अलग पहचान बनाती नारियों को समेटते विमर्श, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से लेकर पुरूष समाज की नारी के प्रति दृष्टि, जैसे तमाम विषय यहाँ चर्चा का विषय बनते हैं।

विचारों के आदान-प्रदान से लेकर संवाद-प्रतिसंवाद तक नारीवादी विमर्श सोशल मीडिया के जरिये विस्तृत हो रहा है। भारत में अकेले फेसबुक से अभी 30 प्रतिशत महिलाएं जुड़ी हुयी हैं। अब तक घरों और परिवारों के दायरे में रही महिलाएं यहाँ अपनी क्षमता दिखाने और पहचानने को तत्पर दिखती हैं। तभी तो महिलाएं घर में घरेलू कार्यों के साथ-साथ अपने दिलो दिमाग में यह भी मंथन कर रही होती हैं कि आज वह किस मुद्दे को लेकर सोशल साइट्स पर लिखेंगी ? जिन मुद्दों व बातों को लेकर घर और समाज में बोलने की बंदिशे हैं, वे सोशल साइट्स पर खुलकर शेयर की जा रही हैं और उन पर अच्छी-खासी बहस भी हो रही है।

यहाँ तक कि सोशल मीडिया के मामले में घरेलू महिलाएं कामकाजी महिलाओं से ज्यादा सक्रिय हैं। घरेलू महिलाओं द्वारा सोशल मीडिया इस्तेमाल करने का आंकड़ा जहाँ 55 फीसदी है, वहीं कामकाजी महिलाओं का 52 फीसदी। अनुभवों और आपबीती को साझा करने से व्यक्तित्व के कितने सुखद पहलू सामने आ सकते हैं, आगे बढ़ने का किस कदर संकल्प जाग सकता है, सोशल मीडिया इसका ज्वलंत उदाहरण है। दिल्ली में हुए गैंगरेप और 5 साल की बच्ची के साथ हुये वीभत्स बलात्कार के बाद उत्पन्न स्थिति में तमाम महिलाओं ने सोशल मीडिया के जरिए न केवल आंदोलन की रूपरेखा तय की बल्कि महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता से लेकर असहिष्णु होते समाज पर लाखों लोगों द्वारा की गई टिप्पणियों ने ऐसे कुकृत्य के विरूद्ध एक माहौल भी बनाया। नतीजा सामने था और सरकार को कारवाई करनी पड़ी।

आज की महिला यदि संस्कारों और परिवार की बात करती है तो अपने हक के लिए लड़ना भी जानती है। ऐसे में नारियों के ब्लॉग पर स्त्री की कोमल भावनाएं हैं तो दहेज, भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, आनर किलिंग, सार्वजनिक जगहों पर यौन उत्पीड़न, लिव-इन-रिलेशनशिप, महिला आरक्षण, सेना में महिलाओं के लिए कमीशन, न्यायपालिका में महिला न्यायधीशों की अनदेखी, फिल्मों-विज्ञापनों इत्यादि में स्त्री को एक 'आब्जेक्ट' के रूप में पेश करना, साहित्य में नारी विमर्श के नाम पर देह-विमर्श का बढ़ता षडयंत्र, नारी द्वारा रुढियों की जकड़बदी को तोड़ आगे बढ़ना.......जैसे तमाम विषयों के बहाने स्त्री के 'स्व' और 'अस्मिता' को तलाशता व्यापक स्पेस भी है। साहित्य की विभिन्न विधाओं से लेकर प्राय: हर विषय पर सशक्त लेखन और संवाद स्थापित करती महिलाएं सोशल मीडिया में काफी प्रभावी हैं।

सोशल मीडिया में सब कुछ अच्छा ही हो रहा है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हर बात के सकारात्मक व नकारात्मक दो पहलू होते हैं। तमाम नकारात्मक लोग भी सोशल मीडिया से जुड़ रहे हैं। कई बार महिलाओं के नाम से फेक प्रोफाइल बनाकर भी दुरूपयोग किया जाता है। ऐसे में अपनी किसी निजी बात या निजी जानकारी मसलन ई-मेल, पता, फोन नम्बर को शेयर करना खतरनाक भी हो सकता है। छद्म नामों से बढ़ती प्रतिक्रियाओं और आरोप-प्रत्यारोपों के चलते भी कई बार महिलाओं को असहज स्थितियों का सामना करना पड़ता है। कई बार तो कुछेक लोग महिलाओं की स्वतंत्रता को बर्दाश्त नहीं कर पाते और और सोशल मीडिया में अनाप-शनाप टिप्पणियां भी करते दिखते हैं। कुछेक माह पहले मुंबई में शिवसेना प्रमुख बालठाकरे की मृत्यु पश्चात घटित घटना गौरतलब है, जब मुंबई के निकट पालघर से शाहीन धाडा और रीनू श्रीनिवासन को जनवरी 2013 में फेसबुक पर कमेंट करने और उसे लाइक करने हेतु न सिर्फ प्रताड़ित होना पड़ा, बल्कि जेल भी जाना पड़ा। यद्यपि बाद में मामले को वापस ले लिया गया पर यह घटना महिलाओं के प्रति समाज को आईना दिखाने के लिए काफी थी। तमिलनाडु के तिरूनेलवली में क्रिमनालाजी के प्रोफेसर डा. जयशंकर और वकील देबरती हल्दर ने इंटरनेट पर हमलों में महिलाओं को निशाना बनाए जाने पर शोध कर, 'क्राइम एंड द विक्टिमाइजेशन आफ वीमेन' नामक किताब लिखी है। इसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि- 'हमारे समाज की पुरुषवादी मानसिकता इंटरनेट पर भी झलकती है, महिलाएं बहस करें या जवाब दें, ये मर्दों को पसंद नहीं। जानीमानी हस्तियों को अभद्र भाषा से निशाना बनाया जाता है और आम महिलाओं का पीछा कर उनसे असल जिन्दगी में संपर्क करने की कोशिश की जाती है।'' ऐसे में सोशल मीडिया का इस्तेमाल संभलकर ही करने में समझदारी है।

आज सोशल मीडिया, परम्परागत मीडिया का न

सिर्फ एक विकल्प बन चुका है बल्कि 'नागरिक पत्रकार' की भूमिका भी निभा रहा है। ऐसे में सोशल मीडिया पर ऐसी बातें जो नारी के विरूद्ध हैं, का उसी अंदाज में भरपूर जवाब भी दिया जा रहा है, आखिर यही तो सशक्तीकरण है। महिलाओं के लिए उलूल-जुलल लिखने एवं उन्हें परंपरागत रूढिवा्दी बंधनों में बाँधने के हिमायती विचारों पर महिलाएं अपना वैचारिक प्रतिरोध भी दर्ज कर रही हैं। अपने व्यक्तिगत प्रोफाइल के साथ तमाम ग्रुप व पेजों पर भी महिलाएं अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। अपनी लेखनी के जरिए जहाँ तमाम छुए-अनछुए मुद्दों को स्थान दे रही हैं, वहीं 21वीं सदी में तेजी से बढ़ते नारी के कदमों को भी रेखांकित कर रही हैं। सोशल मीडिया का सबसे बड़ा फायदा है कि यहाँ कोई सेंसर नहीं है, ऐसे में जो चीज अपील करे उस पर स्वतंत्रता से विचार प्रकट किया जा सकता है। सोशल मीडिया की दुनिया पूर्णतया स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और मनमाफिक तेवरों से भरी है। न रूढ़िगत बाधाएं, न समय का फेर और न दूरी का झंझट, बस एक क्लिक की जरूरत है। ऐसे में सोशल मीडिया द्वारा नारी स्वातंत्र्य व सशक्तीकरण को नए आयाम मिले हैं।

ग़ज़ल

दो ग़ज़लें

'सज्जन' धर्मेन्द्र

संपर्क : क्वार्टर नं. सी-2, एनटीपीसी टाउनशिप, ग्राम : जमथल, थाना : बरमाना, जिला : बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) - 174036
मोबाइल नं. : 9418004272
ई मेल - dkspoet@gmail.com

ग़ज़ल कहनी पड़ेगी झुग्गियों पर कारखानों पर
ये फन वरना मिलेगा जल्द रद्दी की दुकानों पर

कलन कहता रहा संभावना सब पर बराबर है
हमेशा बिजलियाँ गिरती रहीं कच्चे मकानों पर

लड़ाकू जेट उड़ाये खूब हमने रात दिन लेकिन
कभी पहरा लगा पाये न गिद्धों की उड़ानों पर

सभी का हक है जंगल पे कहा खरगोश ने जबसे
तभी से शेर, चीते, लोमड़ी बैठे मचानों पर

कहा सबने बनेगा एक दिन ये देश नंबर वन
नतीजा देखकर मुझको हँसी आई रुझानों पर

जिस घड़ी बाजू मेरे चप्पू नज़र आने लगे
झील सागर ताल सब चुल्लू नज़र आने लगे

जिंदगी के बोझ से हम झुक गये थे क्या जरा
लाट साहब को निरे टट्टू नज़र आने लगे

हर पुलिस वाला अहिंसक हो गया अब देश में
पाँच सौ के नोट पे बापू नज़र आने लगे

कल तलक तो ये नदी थी आज ऐसा क्या हुआ
स्वर्ग जाने को यहाँ तंबू नज़र आने लगे

भूख इतनी भी न बढ़ने दीजिए मेरे हुजूर
सोन मछली आपको रोहू नज़र आने लगे

फेसबुक पर ईश्वर

राहुल देव

जन्म 1988। शिक्षा- एम.ए. (अर्थशास्त्र), बी.एड.। एक कविता संग्रह तथा एक बाल उपन्यास प्रकाशित। पत्र-पत्रिकाओं एवं अंतरजाल मंचों पर कवितायें/ लेख/ कहानियां/ समीक्षाएं आदि का प्रकाशन। वर्ष 2003 में उ.प्र. के तत्कालीन राज्यपाल विष्णुकांत शास्त्री द्वारा हिंदी के नवलेखन पुरस्कार से पुरस्कृत, वर्ष 2005 में हिंदी सभा, सीतापुर द्वारा युवा कहानी लेखन पुरस्कार से तथा अखिल भारतीय वैचारिक क्रांति मंच, लखनऊ द्वारा वर्ष 2008 में विशिष्ट रचनाधर्मिता हेतु सम्मानित। सम्प्रति एक छोटी मोटी नौकरी के साथ साथ स्वतंत्र लेखन में प्रवृत्त।

संपर्क- 9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद (अवध), सीतापुर (उ.प्र.) 261203

ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

आज सुबह से ही स्वर्गलोक में हड़कंप मचा हुआ था। बहुत दिनों बाद देवराज इंद्र ने देवताओं की आपातकालीन बैठक बुलाई थी। किसी को भी बैठक के एजेंडा के बारे में कुछ नहीं पता था बस कहा गया, यह आपात स्थिति है। सब मीटिंग में ही बताया जायेगा। तुरत फुरत आडर निकलवाकर दसों दिशाओं में दूतों को दौड़ा दिया गया। विशिष्ट रूप से आमंत्रित अतिथियों को लाने का कार्यभार देवर्षि नारद को सौंपा गया। खैर नियत समय पर खचाखच भरे सभाकक्ष जहाँ अप्सराएँ नृत्य किया करतीं थीं, में मीटिंग शुरू हो रही थी। त्रिदेवों को बैठने के लिए विशिष्ट आसन दिए गये। मीटिंग बस शुरू होने ही वाली थी कि दौड़ते-भागते यमराज जी भी चित्रगुप्त के साथ हाँफते हुए आये। उनकी सवारी भैसे ने उन्हें आज एन वक्त पर धोखा दे दिया था। अन्यान्य देवी-देवता भी अपनी-अपनी सीट पर बैठ चुके थे।

विषय प्रवर्तन करते हुए देवताओं के राजा इंद्र ने अपने आप को व्यवस्थित किया तत्पश्चात अपनी जंग खाई आवाज़ को बुलंद करते हुए कहना शुरू किया- 'आदरणीय त्रिदेवों एवं सम्मानित देवी-देवताओं। आप सब सोच रहे होंगे कि आखिर क्या बात आन पड़ी कि यह इमरजेंसी मीटिंग बुलानी पड़ी। दरअसल बात यह है कि आजकल इन नामाकूल इंसानों को पता नहीं क्या होता जा रहा है, वे हमारी प्रार्थना व पूजा-अर्चना की जगह ये किसी फेसबुक नामक अस्थायी दुनिया में ज्यादा समय व्यतीत करने लगे हैं। धरती के हालात बड़े नाजुक हैं। अतः अब इस बात को हल्के में लिया जाना बेवकूफी होगी। इंद्र ब्रह्मा जी

की और मुखातिब होते हुए बोले– ब्रम्हा जी आप ही देखिये आपने मानसपुत्रों की करतूतें, आपने इतनी मेहनत से यह सृष्टि बनाई और आज इन मानवों की इतनी हिम्मत कि इन लोगों ने फेसबुक नामक अपनी एक अलग आभासी दुनिया ही बना डाली। और तो और यह मूर्ख मनुष्य जाति अब हमारा पूजा–पाठ भी अपनी इसी आभासी दुनिया में करना शुरू कर दिया है। न कोई फूल–माला, न मिष्ठान, न धूप, वहां हमारे चित्रों पर हमें मिलते हैं सिर्फ लाइक्स और कमेंट्स। श्रद्धा के नाम पर ये नालायक हमारा मज़ाक बना रहे हैं। शीघ्र ही कोई ठोस निर्णय न लिया गया तो हम देवों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। इतना कहकर देवराज थोड़ी देर के लिए रुके।

सचमुच यह एक विकट और गंभीर प्रश्न था। पूरी सभा में सन्नाटा व्याप्त था। लग रहा था सभी इंद्र की बातों को बड़ा ध्यान लगाकर सुन रहे हैं। यमराज ने कोहनी मारकर सोते हुए चित्रगुप्त को जगाया। शायद नरक में कुछ काम बढ़ जाने के कारण वे ओवरटाइम कर रहे थे जिस कारण वे धरती लोक के नेताओं की तरह अपनी नींदें इस तरह की सभाओं में पूरी कर रहे थे। उधर देवराज इंद्र ने अपने भाषण का अगला अंश प्रस्तुत किया। यह फेसबुक किसी जुकरबर्ग नाम के शैतान खोपड़ी की उपज है। लोग उसकी आभासी दुनिया को अपनी असल दुनिया से बढ़कर समझने लगे हैं। उसकी देखादेखी कई अन्य मायावियों जैसे ट्विटर, जीप्लस, लिंक्डइन, मायस्पेस, व्हाट्सएप ने भी अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया है। अगर इनका कारोबार ऐसे ही चलता रहा तो हम लोगों का क्या होगा। देवराज के माथे पर चिंता की लकीरें अब साफ़–साफ़ देखी जा सकतीं थीं। उन्हें शायद अपना सिंहासन डोलता हुआ नज़र आ रहा था। काफी समय से उनकी दबी हुई भावनाएं आज जमकर बाहर आ रहीं थीं। अन्य देवतागण भी इस पर कुछ कहें यों कहकर वह बैठ गये।

देवराज का इशारा पाकर सर्वप्रथम अग्निदेव उठे। सबकी नज़रें उनकी तरफ उठ गयीं। अग्निदेव बोले– देवराज की चिंताएं अपनी जगह ठीक हों सकती हैं लेकिन मेरा मत है कि इन्सान हमेशा से कुछ नया करना चाहता है मगर हम देवता उसी एक लीक को पीटते रहते हैं। मुझे तो लगता है कि हमें इंसानों से कुछ सीखना चाहिए। अब माना के कलयुग है मगर इसका मतलब यह तो नहीं कि हम अपनी जिंदगी को यूँ ही एकरस तरीके से बिता दें। देखिये अब ज्यादा घुमाफिराकर नहीं सीधा मुद्दे की बात कहता हूँ। इन्सान अपनी सुविधानुसार चीज़ों को बदलता रहता है मगर हम नहीं। मैंने चवालीस बार देवराज से कहा कि यहाँ देवलोक में ए.सी. लगवा दीजिये। मगर उनको अप्सराओं के नृत्य देखने से ही फुरसत नहीं मिलती। मारे गर्मी के मेरा क्या हाल होता है मैं ही जानता हूँ।

अग्निदेव के आक्षेप से देवराज कुछ घबराये। उन्होंने उनसे बैठने का इशारा किया। अग्निदेव अपनी व्यथा पुराण आगे बाँच पाते कि उनके बगल में बैठे वरुण देव बोल उठे– देवराज की बात मुझे ठीक मालूम होती है। यह मनुष्य अपने आप को समझते क्या हैं। वह आज स्क्रीन टच करते हैं, अपने से बड़ों के चरण स्पर्श नहीं, उन्हें पासवर्ड्स याद हैं अपने पड़ोसियों के चेहरे नहीं। उनके कमरों की दीवारों और कैलेंडरों में चलचित्र की अर्धनग्न नायिकाएं विराजती हैं हम जैसे देवतागण नहीं। उनके गमले में मनीप्लांट दिख जायेगा परन्तु तुलसी का पौधा नहीं। इन मानवों को अब बस लैपटॉप और टेबलेट प्यारा है माँ की गोद नहीं। उन्हें पार्क में लगे हुए बनावटी फव्वारों से प्यार है परन्तु गांव के तालाबों, नदी, पोखरों से नहीं। धरती पर आज लोग कुत्तों से प्यार करते हैं अपने बूढ़े पिता से नहीं। प्रियतमा की हर एक बात स्वीकार है इन गधों को लेकिन माँ की नसीहतें नहीं, रेस्टोरेंट में बीस रुपये की टिप दे देंगे लेकिन किसी भिखारी किसी ग़रीब के लिए इनके पास पैसे नहीं होंगे,

नंगे-धड़ंग बच्चों की तस्वीरें हजारों-लाखों में बिकेंगी लेकिन उन्हें कपड़े पहना सके ऐसा कोई मनुष्य नहीं दीखता मुझे। काहे का और कौन से विकास की बात कह रहे है ? सारी सभ्यता और संस्कृति को तो आधुनिकता की चाशनी में घोलकर पी गयी है यह मानव जाति। अत: देवता होने के नाते हमारा कर्तव्य ही नहीं धर्म है कि हम उन्हें सही रास्ता दिखाएँ। मेरे खयाल से धरती पर कुछ विनाश लीला कर हम उन्हें सबक सिखा सकते हैं।

इंद्र देव ने अपना माथा पीट लिया। वरुण देव की गाड़ी सधे तरीके से एकदम सही ट्रैक पर जा ही रही थी कि अंत में गलत स्टेशन के आउटर पर आकर पटरी से उतर गयी। उनके विनाश के आईडिये ने सब गुड़-गोबर कर दिया था।

सूर्य देव की व्यथा कुछ यूँ थी। वे बोले- गुस्ताखी माफ़ हो लेकिन परमपिता ने सत, रज और तम इन तीन गुणों के आधार पर मुख्य रूप से तीन जातियां बनाई थीं। देवता, मनुष्य और राक्षस। लेकिन आज धरती पर जिस गति से हत्या, अपहरण, लूटमार, बलात्कार आदि अपराध बढ़ रहे हैं। सारा ज्ञान सिर्फ किताबों में हैं। सही बातों और सच्चे धर्म को आचरण में उतारना तो दूर ये मानव उसे पढ़ना तक नहीं चाहते। धर्म का ठेका भी समाज के कुछ गिने-चुने ठेकेदारों के पास सुरक्षित है। मेरा तो खून खौलता है यह सब देखकर। समय तो यह आ गया है कि मनुष्य, मनुष्य का दुश्मन हुआ जाता है। इन्हें देखकर तो राक्षसों को भी शरम आ जाये। अब इससे ज्यादा मैं क्या कहूँ...

सूर्यदेव की इतनी गंभीर बातों को सुनकर एकबारगी सभाकक्ष में सन्नाटा छा गया। कितनी जटिल समस्याएं और कितने विकट प्रश्न ??

देवियों के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व कर रही माता लक्ष्मी जी आज अपनी चंचलता को छोड़कर गंभीर मुखमुद्रा में लग रहीं थीं। उन्होंने कहा कि मेरी सौ की सीधी एक बात यह है कि हम देवियाँ भी किसी बात में आप देवताओं से कम नहीं हैं अब चूँकि धरती पर स्त्रीविमर्श अपने चरम पर है तो भला हम इसमें पीछे कैसे रह सकती हैं। कान खोलकर सुन लें सभी देवतागण अब हम देवियाँ किसी का आदेश मानने पर विवश नहीं हैं। हम न ही किसी के पैर दबाएंगी न ही आपको स्वामी और स्वयं को दासी समझेंगी। हमें भी यहाँ सदियों से दबाया गया है लेकिन इन मनुष्यों की वजह से हमारी सुप्त हो चुकी चेतना जागृत हो चुकी है। उनकी तेजस्वी वाणी और एकदम स्पष्ट शब्दों में यह बात सुनकर सभी देवियाँ एक स्वर में बोल उठीं- तानाशाही नहीं चलेगी, नहीं चलेगी, नहीं चलेगी। देवी एकता जिंदाबाद, जिंदाबाद, जिंदाबाद। यह देखकर सभी देवता सकते में आ गये। स्थिति को आउट ऑफ़ कण्ट्रोल होते देखकर देवगुरु ब्रहस्पति ने बीच में आकर देवियों के ग्रुप को कुछ शांत रहने का संकेत किया तब जाकर मामला कुछ शांत पड़ा और सभा की कार्यवाही कुछ आगे बढ़ी।

कामदेव का नंबर आया तो वह अपनी तिरछी नज़र साइड में पंखा झलती हुई सुंदरियों पर डालते हुए ऐसे शुरू हुए मानो बहुत समय से भरे बैठे हों। वे बोले कि अब साहब धरती पर धर्म-कर्म बचा ही नहीं। इस ग्लोब्लाइजेशन और कंप्यूटर की बयार में हर कोई बहा चला जा रहा है। आज हर दूसरा आदमी ऑनलाइन और हर तीसरा आदमी व्यभिचारी है। मुझे कोई पूछता ही नहीं। इनके कंप्यूटर पर एक बार मेरी नज़र इनकी कामक्रीडाओं पर पड़ गयी तो मैं मारे शर्म के पानी-पानी हो गया। उफ्फ ! कुछ भी नहीं छोड़ा इन बेशर्मों ने। सचमुच बड़ी खतरनाक कौम है, राम बचाए इन मनुष्यों से।

यमराज जी से कहा गया कि वे अपनी बात रखें तो उन्होंने कहना शुरू किया। उनके पास अपनी खुद की इतनी समस्याएँ थीं कि उन्हें लिख कर लाना पड़ा था। चित्रगुप्त से शिकायतों का खर्रा अपने हाथों में लेकर उन्होंने पढ़ना शुरू किया। उनके

इतने बड़े खर्रे को देखकर उस मीटिंग में उपस्थित सभी देवी-देवताओं के माथे पर बल पड़ गये। दरअसल ज्यादातर लोग बड़ा लम्बा-लम्बा बोल रहे थे और मीटिंग इतनी देर से चल रही थी कि लगभग सभी देवी-देवता ऊब गये थे। देवराज इंद्र ने यमदेव से अपना भाषण शोर्ट में रखने का संकेत किया। यमराज जी ने कहना शुरू किया- हे देवताओं मेरी बात ध्यान से सुन लीजिये। सबसे ज्यादा कष्ट तो हमीं को झेलना पड़ रहा है। द्वापर तक तो गनीमत थी परन्तु इस कलियुग के आ जाने के बाद से हमारे डिपार्टमेंट पर वर्कलोड बहुत ज्यादा बढ़ गया है। आप लोगों का क्या आप लोग तो यहाँ मौजमस्ती में जुटे रहते हो। मेरे मातहत किस तरह दिनरात काम करते हैं, वहां नरक में क्या हालात होते हैं हमीं जानते हैं। उधर धरती पर छठा वेतन आयोग लागू है और सातवें की घोषणा हो चुकी है और यहाँ मेरी सुख सुविधाओं में युगों से कोई इजाफा नहीं हुआ है। एन वक्त पर आज सवारी ने धोखा दे दिया तभी तो मैं इस मीटिंग में समय पर नहीं आ सका। यह भी कोई बात हुई बताइए ? अरे इतने दिनों में तो घूरे के दिन भी बहुरते हैं मगर यमराज होकर भी मुझे एक भी सुख नसीब नहीं। और तो और पृथ्वी पर चल रहे दलित विमर्श की देखा देखी यमदूत व अन्य सेवकगण भी आँखें दिखाने लगे हैं। तो इसलिए बहुत संक्षेप में मेरी दो छोटी सी मांगें हैं- पहली नरक की एच.आर. वेकैसी भरी जाये दूसरी मुझे मनुष्यों की तरह हाईस्पीड व औटोमैटिक सर्व सुख सुविधा संपन्न गाड़ी वाहन के तौर पर दी जाये। और हाँ जहाँ तक इस फेसबुक की बात है इसपे आप लोग मिलकर चाहें जो निर्णय लें हमारी उक्त दोनों शर्तों के पूर्ण होने की बिना पर हमें सब स्वीकार है।

अब बारी थी पवन देव की। उनके चेहरे का रंग कुछ उड़ा हुआ लग रहा था। गला खंखारते हुए उन्होंने कहना शुरू किया। आदरणीय देवियों और देवताओं मैं भी इस मनुष्य जाति से बड़ा परेशान हूँ। आज पृथ्वीलोक के हालात वास्तव में बड़े क्रिटिकल हैं। मेरा तो दम घुटता है वहां पर तो बीच बीच में ताज़ा होने ऊपर आ जाता हूँ। इंद्र देव की तरफ देखते हुए पवन देव ने आगे कहा- कभी अपने सिंहासन से उतरकर नीचे जाके तो देखिये, चारों तरफ इतना कूड़ा-कचरा इतना प्रदूषण है कि मियां एक क्षण न ठहर सकेंगे वहां। स्वर्गलोक की सारी आरामतलबी वहां जाकर भूल जाएगी। इन मनुष्यों पर तो जैसे अपना कोई वश ही नहीं रहा। प्राकृतिक संपदा का अधाधुंध दोहन हो रहा है, जंगल मैदान हो गये हैं, सारी नदियाँ कराह रहीं हैं। यह विषाक्त वातावरण अगर ऐसे ही बना रहा तो और कोई कुछ करे न करे लेकिन मैं कुछ ही दिनों में अवश्य ही अपनी सेवा से वीआरएस ले लूँगा, तब मत कहना। इन शोर्ट मुझे बस यही कहना था।

देवराज ने देवताओं की तरफ आँखें टेढ़ी करके देखा मानो कहना चाहते हों कि सभा ख़त्म होने दो फिर तुम सबसे निपटूंगा। वह सोच रहे थे कि यहाँ तो अपने साथी ही अपने साथ नहीं हैं। यह तो पासा उल्टा पड़ रहा है। खैर देखते हैं अब परमपिता क्या निर्णय लेते हैं।

सबकी नज़रें त्रिदेवों की तरफ उठ गयीं ! त्रिदेव विषय की गंभीरता को बखूबी समझ रहे थे। कुछ देर तक वे सोच में डूबे रहे फिर कुछ देर आपस में मंत्रणा की। देवतागण अधीर हो रहे थे कि क्या निर्णय होने वाला है ? कि तभी सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने कहना शुरू किया।

वह बोले- हमने सबकी बातों/समस्याओं/तर्कों-वितर्कों को ध्यान से सुना है और बहुत सोच विचारकर सर्वसम्मति से यह निर्णय किया है कि सभी देवी देवता भी फेसबुक की आभासी दुनिया में घूमकर आयें और थोड़ा रिफ्रेश हो जाएँ। वे फ़ौरन फेसबुक पर अपनी आईडी बनाएं पर और अपनी घिसीपिटी लाइफ को चेंज कर किंचित आधुनिक हो जाएँ। इसमें कोई बुराई नहीं है। अतः हम देवराज इंद्र को यह आदेश देते हैं कि चौबीस घंटे

के अन्दर सभी के लिए समस्त आधुनिक व्यवस्थाएं उपलब्ध कराना सुनिश्चित करें। हर मौसम के लिए अलग अलग कपड़े, एसी, फ्रीज़, कंप्यूटर, मोबाइल आदि आवश्यक सभी सुविधाएँ। आप लोग बिलकुल भी चिंता न करें। यह सिर्फ एक प्रयोग मात्र है। इन्हें अपनाकर ही हम इनकी अच्छाई या बुराई जान सकते हैं। उसके बाद इन मनुष्यों का क्या करना है इसका फाइनल निर्णय अगली मीटिंग में होगा। यों कहकर त्रिदेव मुस्कुराये। समस्त देवी–देवताओं ने जो आज्ञा कहकर करतल ध्वनि से इस निर्णय का स्वागत किया और देवराज इंद्र के धन्यवाद ज्ञापन के साथ यह सभा विसर्जित हुई।

कुछ लोग खाने–पीने के चक्कर में मीटिंग ख़त्म होने के बाद भी अपने अपने आसन पर बैठे हुए थे। कुछ लोग खुश थे कुछ दुखी दिखाई दे रहे थे। कुछ लोग जा रहे थे तो कुछ लोग क्या हुआ...क्या हुआ यह पूछते हुए अब आ रहे थे।

खैर अब आप तो समझ ही गये होंगे कि अगली मीटिंग कब होगी, होगी भी या नहीं होगी बीकॉज़ फेसबुक इज द सेकंड लार्जेस्ट यूज्ड वर्ड स्टार्टिंग विथ एफ एंड एंडिंग विथ के (समझदार और शरीफ़ लोग पहला वाला जान ही रहे होंगे) एंड लॉगआउट इज द हार्डस्ट बटन टू क्लिक!! इति!!!

।। अनुरोध ।।

पत्रिका के बारे में आपकी प्रतिक्रियाएं हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं अतः हमें पत्रिका के बारे में अपने विचारों से अवश्य अवगत कराएँ।

आर्थिक सहयोग की अपेक्षा :

'संवेदन' समूह को आर्थिक सहयोग करने के लिए आप न्यूनतम 100 रु. या उससे ज्यादा की धनराशि निम्नलिखित खाते में जमा कर सकते हैं। धनराशि जमा करने के बाद मोबाइल नंबर 09454112975 या ईमेल- samvedan.sparsh@gmail.com पर संपर्क करें।

खाताधारक- RAHUL DEV
खाता नंबर- 32931377879
शाखा- स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया, विधानसभा मार्ग, लखनऊ (उ.प्र.)
ब्रांच कोड- 60284
IFSC कोड- SBIN0060284

छः लघुकथाएं

कृष्ण कुमार यादव

जन्म-1977
शिक्षा-एम.ए. (राजनीति शास्त्र)। लेखन-विधा- कविता, कहानी, लेख, लघुकथा, हाइकु, व्यंग्य एवं बालकविताएं । अब तक 6 कृतियाँ प्रकाशित, देश-विदेश की प्रायः अधिकतर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं इत्यादि में रचनाएँ प्रकाशित। 50 से ज्यादा स्तरीय संकलनों/पुस्तकों में रचनाएँ संग्रहित। अपनी सतत् साहित्य सृजनशीलता हेतु 50 से ज्यादा सम्मान और मानद उपाधियाँ प्राप्त।
संपर्क- निदेशक डाक सेवाएँ, इलाहाबाद परिक्षेत्र, इलाहाबाद (उ.प्र.)- 211001
ईमेल-
kkyadav.y@rediffmail.com

एन.जी.ओ.

वह सरकार के बड़े ओहदे पर थे। जैसे-जैसे उनके रिटायरमेंट का समय नजदीक आने लगा, माथे पर चिंता की लकीरें खिंचने लगीं। एक ही झटके में सरकारी बंगला, गाड़ी, ऐशो-आराम......सब कुछ छिन जाएगा ! - यह सोच-सोचकर तो उन्हें रातभर नींद नहीं आती। अपने से पहले रिटायर्ड लोगों को देखते तो और हताशा होती। कोई बहू के तानों से परेशान था तो कोई डिप्रेशन का शिकार। कई-कई तो हार्ट अटैक भी झेल चुके थे। समाज में वह रुतबा भी नहीं रहा। कल तक जो लोग सर झुकाकर सलाम करते थे, देखते ही रास्ता बदलने लगे थे।........यह सब सोच ही रहे थे कि एक पुराने परिचित आ धमके।
'...... क्या बात है भाई, टेंशन में लग रहे हैं !'
'हाँ यार, यह जीवन भी अजीब पहेली है। अब देखो ना.....'
फिर उन्होंने अपनी सारी व्यथा कह सुनाई।
'बस, इतनी सी बात है। आप तो अच्छे ओहदे पर विराजमान हैं। काफी जान-पहचान भी है। फिर, अभी रिटायरमेंट में पूरा एक सालबचा है...क्यों न एक एन०जी०ओ० बना लेते ! इसी बहाने समाज-सेवा भी होती रहेगी।'
'....कहाँ बुढ़ापे में समाज-सेवा करता फिरूँगा, अभी अपनी ही कर लूँ तो बड़ी बात होगी।'
सामने बैठा व्यक्ति जोर से हँसा, 'आप भी कैसी बातें करते हैं? समाज-सेवा तो मात्र नाम की चीज़ है। एन.जी.ओ. बनाकर तो आप अपनी ही सेवा करेंगे। पहले तो इस एन.जी.ओ. से तमाम

अधिकारियों की बीवियों को जोड़ लें। फिर आफिसर्स क्लब में कुछेक कार्यक्रम करा दें। एक-दो अनाथालयों की सैर करा दें। नए साल व त्योहारों पर कुछ कपड़े-खिलौने इत्यादि लेकर इन अनाथ बच्चों को बांट दें। आखिर घर की पुरानी चीज़े फेंकने से तो बेहतर होगा। ऐसे कार्यक्रमों से इलाके के जनप्रतिनिधियों और ठेकेदारों को भी जोड़ लें। दो-चार बुद्धिजीवी टाइप लोगों से अपने बारे में अच्छी-अच्छी बातें कहवा लें और कुछेक अखबार वालों को मैनेज कर लें। यदि विदेश में कोई सूत्र मिल जाए तो वहाँ से भी एन.जी.ओ. को अनुदान मिल सकता है।'

बात उनकी समझ में आ गई। आँखें चमक उठीं। अगले पूरे साल उन्होंने कार्यालय के कार्यों पर कम एन.जी.ओ. को जमाने पर ज्यादा ध्यान दिया। पत्नी के नाम पर रजिस्टर्ड उस एन.जी.ओ. को अपने रिटायरमेंट तक वे अच्छा-खासा चमका चुके थे। आजकल, साथ के अधिकारियों, जान-पहचान के व्यवसायियों, ठेकेदारों और नेताओं-सभी को इस एन.जी.ओ. के सान्निध्य में बुलाकर वे सहर्ष समाज-सेवा करते हैं और उच्च-स्तरीय समाज-सेवक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं।

चिंता

वह बड़े रसूख वाले नेता थे। सरकार किसी भी दल की हो उनका मंत्री पद पक्का था। आखिरकार अपने अनुभवों से वे हवा का रूख भांपने में माहिर थे। चुनाव के वक्त उसी दल के साथ मिल जाते जिसकी सरकार बनने की संभावना होती। इस बार भी केबिनेट में उन्हें एक मलाईदार महकमा प्राप्त हुआ, फिर तो उनके अपने भी मलाई खाने लगे।
......अचानक उन्हें दिल का दौरा पड़ा। तुरन्त राजधानी के पंचतारा सुविधाओं से युक्त हास्पिटल में भर्ती कराया गया।

देखते ही देखते वहाँ लोगों की भीड़ इकट्ठा होने लगी। सभी आगंतुक यह जानने के प्रयास में थे कि मंत्रीजी बचेंगे या नहीं?
ठेकेदार इस बात पर मंथन कर रहे थे कि मंत्रीजी नहीं बचे तो उन तमाम कार्यों का क्या होगा जिसके लिए उन्होंने एडवांस पेशगी ले रखी थी। तमाम नौजवान नेता जो उनके रसूख के चलते अपनी राजनीति चमकाते थे! उन्हें यह चिंता सता रही थी कि यदि नेता जी चल बसे तो उन्हें कोई दूसरा गाड फादर मिलने तक सत्ता के गलियारों में आवारा कुत्ते की तरह दर-दर भटकना पड़ेगा। इससे परे वहाँ शुभेच्छुओं के रूप में ऐसे लोग भी सक्रिय थे, जिन्हें विश्वास था कि नेताजी की मौत पश्चात उन्हें ही टिकट मिलेगा।
तात्पर्य यह कि नेता जी का हाल जानने को आने वाला हर व्यक्ति वहाँ चिंतित और परेशान नजर आ रहा था। पर किसी को भी नेताजी के स्वास्थ्य की फिक्र नहीं थी, बस फिक्र या चिंता थी तो अपने स्वार्थों की।

व्यवहार

वह गाँव के बड़े दबंग व्यक्ति थे। रुतबा इतना कि पिछले कई सालों से प्रधानी उनके ही घर में थी। उनकी बहू को लड़का हुआ तो घर पर खुशियों की बहार आ गई। उस दिन क्या जबरदस्त पार्टी दी थी उन्होंने।....मेहमानों की खातिरदारी में कल्लू भी लगा हुआ था। अचानक उसे शिशु के रोने की आवाज सुनाई दी। अंदर जाकर देखा तो नवजात शिशु सोते-सोते जाग गया था और अपनी माँ को न पाकर रो रहा था। उसने दुलारवश नवजात शिशु को गोद में लिया कि मालकिन के पास पहुँचा देगा। अचानक बहू बाथरूम से निकलीं और उसके हाथ

से बेटे को छीन लिया।
'....तुम्हारी हिम्मत कैसी हुई इसे छूने की ?'
'...मालकिन मैं तो...!'
'एक तो नीची जाति के हो, उसपर से तुमने मेरे बच्चे के सुकोमल शरीर को हाथ लगा दिया! अब तो इसे पंडित जी को बुलाकर मंत्रोच्चारण के बीच गंगाजल से स्नान कराना होगा।'
कुछेक महीने गये। पता चला गाँव में जिले के कलेक्टर साहब आने वाले हैं। प्रधान होने के नाते ठाकुर जी ने पूरा बंदोबस्त कर लिया कि कलेक्टर साहब को कोई परेशानी न हो। कलेक्टर साहब अपनी कार से उतरे तो ठाकुर साहब सपरिवार उनके स्वागत में फूल-माला लिए खड़े थे। कलेक्टर साहब की जमकर खातिरदारी हुई।
जब उनके जाने का समय हुआ तो ठाकुर साहब अपने पौत्र को लेकर आए और उनकी गोद में डाल दिया, 'कलेक्टर साहब यह हमारा वंश है, आप इसे भी आर्शीवाद दें।'
दूर खड़ा कल्लू सोच रहा था- कि आखिर कलेक्टर साहब भी तो उसी की जाति के हैं!

खतरनाक

वह शहर के नामचीन डाक्टर थे। लोग कहते थे डाक्टर साहब मरे हुए व्यक्ति को भी जिंदा करने की कला जानते हैं। उस दिन सुबह ही सुबह उनके पास दो इमरजेन्सी केस आए।
पहला केस गाँव के एक गरीब व्यक्ति का था, जिसको साँप ने डस लिया था। उसका पूरा परिवार बद्हवास सा गिड़गिड़ा रहा था- 'डाक्टर साहब! इन्हें बचा लीजिए, नहीं तो हम अनाथ हो जाएंगे।' डाक्टर साहब ने साँप के डसने की जगह पर एक छोटा सा चीरा लगाया, फिर इंजेक्शन और दवाएँ। वह व्यक्ति अब स्वस्थ था।
दूसरा केस एक अभागी दुल्हन का था। शहर के जाने-माने व्यवसायी उसके ससुर ने उसे जिंदा जलाने की कोशिश की थी। बहू के माता-पिता बद्हवास से गिड़गिड़ा रहे थे- 'डाक्टर साहब! हमारी बेटी को बचा लीजिए यह हमारी इकलौती संतान है।'
डाक्टर साहब ने उन्हें धीरज बंधाया और आपरेशन-थिएटर में घुस गए। आपरेशन-थिएटर के बाहर पूरे तीन घंटे तक लालबत्ती जलती रही। तीन घंटे बाद जब डाक्टर साहब थिएटर से बाहर निकले तो उनके माथे पर चिंता की लकीरें थीं। परिवार वाले कुछ पूछते, उससे पहले ही उनके मुँह से निकला -'जानवर का काटा एकबारगी बच भी जाए, पर आदमी का काटा.......!!'

योग्यता

सत्ता बदलते ही उनकी चाँदी हो गई। मुख्यमंत्री जी की जाति का होने के चलते उन्हें उस आयोग के अध्यक्ष की कुर्सी मिल गई, जो प्रदेश में भर्तियों व चयन का काम करता। अचानक वह महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए थे। उनके पास सिफारिशों की भरमार होती गई, पर वह योग्यता मात्र को महत्व देते।

अचानक मुख्यमंत्री सचिवालय से अध्यक्ष जी को अभ्यर्थियों की एक सूची मिली। साथ ही यह निर्देश भी कि इन सभी को फाइनल मेरिट में चयनित करना है। अध्यक्ष महोदय ने लिस्ट देखी तो कोई भी उस पद योग्य नहीं दिखा। स्वभावानुसार उन्होंने उस सूची को दरकिनार कर दिया।
बात पता चली तो मुख्यमंत्री जी ने उन्हें तलब किया- 'अध्यक्ष जी! मेरे द्वारा भिजवाई गई सूची

का क्या हुआ? सुना है आपने सभी को दरकिनार कर दिया।'

'...... जी ! ऐसा नहीं है।'

'फिर उनका चयन क्यों नहीं हुआ ?'

'........जी ! दरअसल उनसे अच्छी योग्यता वाले तमाम अभ्यर्थियों थे और परीक्षा में भी उन्होंने अच्छा प्रदर्शन किया है।'

'..........योग्यता ! तुम्हारी योग्यता क्या है? सिर्फ यही न कि तुम मेरी जाति के हो। वरना अध्यक्ष पद के लिए एक-से-एक योग्य लोग लार टपकाए बैठे हैं। तुम्हें इस कुर्सी पर इसलिए बिठाया था कि अपनी जाति के लोगों का भला करोगे न कि मुझे योग्यता का पैमाना समझाओगे।'

'.... अभी जाइए और तुरंत उस सूची में शामिल लोगों के चयन की घोषणा कर मुझे बताइए अन्यथा अध्यक्ष पद और तुम्हारी योग्यता भी खतरे में है।'

मुख्यमंत्री कार्यालय से बाहर निकलते अध्यक्ष जी अब अपनी ही योग्यता और ईमानदारी को लेकर असमंजस में थे।

इन्वेस्टमेंट

जबसे कार्यालय में साक्षात्कार आरंभ हुआ है, रामप्रसाद जी के चेहरे पर अजीब सी मुस्कान तैरती है। आखिर लोगों का भला करने के साथ-साथ वे अपना भी तो भला कर रहे थे। हर सीट के लिए उन्होंने रेट तय कर दिए थे। पर रिश्तेदारों से कैसे निपटें। वे तो हर चीज मुफ्त में चाहते हैं और इधर लाखों का नुकसान। ऊपर से वरिष्ठ अधिकारियों को भी तो खुश रखना है।

तभी पी.ए. ने बताया कि एक व्यक्ति उनसे मिलना चाहता है। कुछ देर बाद उसे अन्दर मिलने के लिए बुलवाया। मुलाकाती हाल ही में सरकारी ओहदे से रिटायर्ड हुआ एक बुजुर्ग व्यक्ति था।

'........बताएँ कैसे आना हुआ?'

'सर, सुना है आपके कार्यालय में क्लर्क पद के लिए साक्षात्कार चल रहा है। मैं चाहता हूँ कि मेरा इकलौता बेटा भी एडजस्ट हो जाए।'

'आप तो जानते ही हैं.......'

इससे पहले कि रामप्रसाद जी की बात पूरी होती, बुजुर्ग व्यक्ति तपाक से बोला- 'उसकी चिंता न करें। आपकी माँग पूरी कर दूँगा। बस किसी तरह मेरा बेटा आपके महकमे में फिट हो जाए।'

'....... आप तो काफी समझदार हैं।'

'आखिकार मैं भी तो सरकारी ओहदे से रिटायर्ड हूँ। अपनी पेंशन की अच्छी-खासी राशि यहाँ इन्वेस्ट करूँगा तो उसे दुगुना करने में पाँच साल का भी इंतजार नहीं करना पड़ेगा। आजकल तो क्लर्कों की चाँदी है।'

रामप्रसाद जी ने अपने पी.ए. को बुलाया और दूर के एक रिश्तेदार का नाम काटकर उस बुजुर्ग व्यक्ति के पुत्र का नाम अंकित करने को कहा।

अब दोनों अपने अपने इन्वेस्टमेंट से खुश थे।

रचनाकारों से निवेदन

1- रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि जहाँ तक संभव हो अपनी रचना ई-मेल से भेजने का कष्ट करें।

2- कृपया रचना के अंत में अपना पूरा पता, मोबाइल न. और ईमेल पता लिखने का कष्ट करें। साथ ही अपनी फोटो और संक्षिप्त जीवन-परिचय भी भेजें।

3- समीक्षा के लिए आपकी पुस्तकों का स्वागत है।

बृजेश नीरज

जन्म 1966
शिक्षा- एम.एड. एल.एल.बी.। एक कविता संग्रह प्रकाशित इसके अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं आदि में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्प्रति- उ0प्र0 सरकार के शिक्षा विभाग में नौकरी व स्वतंत्र लेखन।
संपर्क- 65/44, शंकर पुरी, छितवापुर रोड, लखनऊ- 226001
ईमेल-
brijeshkrsingh19@gmail.com

दस छोटी कविताएँ

अँधेरे से लड़ने के लिए

अँधेरे से लड़ने के लिए
धूप जरूरी नहीं होती
जरूरी नहीं होते चाँद और सूरज

जरूरी नहीं दीपक
तेल से भीगी बाती
माचिस की तीली

जरूरी है आग
मन के किसी कोने में सुलगती आग

क्षितिज

दूर छोर पर
एकाकार होते
सिन्दूरी आसमान
और हरी धरती

उस रेखा का कोई रंग नहीं

सौन्दर्य

गालों पर ठिठकी
पानी की बूँद

गुलाब की पंखुड़ी पर ठहरी
ओस

एक स्थिति

खाली बाल्टी
और उसमें
नल से
बूँद-बूँद टपकता पानी

मैं देख रहा हूँ
किंकर्तव्यविमूढ़

याद

हवा के झोंके के साथ
फड़फड़ाकर खुल गए
पुरानी किताब के कुछ पन्ने

कई चित्र उभर आये

अकेलापन

ऊपर आकाश
नीचे धरती
बीच में 'मैं'
अकेला

संघर्ष

तपते दिनों के बाद
सर्द हवाओं का मौसम

कब से बारिश नहीं हुई
बहुत से सपने सूख गए

शहर

सड़कों पर दौड़ती गाड़ियाँ
बेतहाशा भागते लोग
दूर तक फैला
कंक्रीट का जंगल
अस्त-व्यस्त व्यवस्था
हवा में तैरता कोलाहल

सुकून के साथ बैठें दो पल
जगह की तलाश है

झंडे

सामने से गुज़र रही है
भीड़
हाथों में हैं झंडे
केसरिया
हरे

बढ़ता जा रहा है
शोर
नारों का दबाव
उन्माद

झंडे
हथियार बन गए
लाल होने लगी जमीन

यह अजीब बात है
झंडे चाहे जिस रंग के हों
जमीन लाल ही होती है !

बादल घेरे हुए

अचरज की बात है
सबेरा नहीं हुआ
सब देर तक सोते रहे

बादल
जब कस के घेरे हों
रात-दिन में फर्क करना
मुश्किल होता है !

जगदीश पंकज

जन्म- 1952 शिक्षा- बी.एससी.। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में गीत एवं कवितायें प्रकाशित, एक नवगीत संग्रह प्रकाशनाधीन। सम्प्रति- सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में वरिष्ठ प्रबन्धक के पद से सेवानिवृत्त एवं स्वतंत्र लेखन।
संपर्क- सोमसदन, 5/41 सेक्टर-2, राजेन्द्रनगर, साहिबाबाद, गाज़ियाबाद- 201005
ईमेल-
jpjend@yahoo.co.in

तीन नवगीत

यह दौड़ रोक अब तो

यह दौड़ रोक अब तो
ठहरो, उसे बचाओ
बूढ़ी कहावतों में
जो आदमी बचा है

बस हिचकियाँ बची हैं
अपने रुंधे गले में
सब हैं यहाँ अकेले
निस्सीम काफिले में
अपने से मसखरी है
अपने से ही ठिठोली
अपनी मनस्थली अब
अपना ही सींखचा है

वसुधाकरण हुआ अब
अपनी छिपी शरम का
परगर्व श्रेष्ठता के
टूटे हुए भरम का
कर भीख का कटोरा
परदर्प दानियों का
ऋण मांगने में अपनी
रेहन रखी त्वचा है
अब रैम्प पी रहा है
खय्याम की रुबाई

बाज़ार में खड़े हैं
पद, भजन व चौपाई
हर आस्था विखंडित
विश्वास लड़खड़ाया
सद्भाव का उड़ा अब
हर ओर परखचा है।

जैसा सहा वैसा कहा

जैसा सहा, वैसा कहा
कुछ भी कभी
अतिशय नहीं
मुझको किसी का
भय नहीं.

आकाश के परिदृश्य में
कितनी घटायें निर्जली
मेरी अधूरी कामना भी
अर्ध्यसत्यों ने छली
सच्चा कहा, अच्छा कहा
मुझको कोई
संशय नहीं

पग–पग विरोधाभास में
जीते रहे, मरते रहे
अपनी बनायीं वर्जनाएं
पार भी करते रहे
जैसा जंचा, वैसा रचा
बदला कोई
आशय नहीं

अपने प्रबंधन में जरा
कोई कहीं तो खोट है
जो आंगनों में हो रहा
आक्रोश का विस्फोट है
अब रूठना, या टूटना
देता कोई
विस्मय नहीं।

जर्जर नाव, बहाव तेज है

जर्जर नाव, बहाव तेज है
कैसे पार लगे

आपा धापी
अफरा–तफरी
भागमभाग मची
तन–मन के
सुस्ताने भर को
सीमित साँस बची
सम्बन्धों का ठंडापन भी
अब व्यापार लगे

डिजिटल होता हुआ
आदमी, जगता
सोता है
घुटन और अवसाद
तनावों को ही
ढोता है
विकट व्यस्तता में घिरकर,
सबकुछ बेकार लगे

दर्द पीढ़ियों का
संचित होकर
अब फूट रहा
अपना,
अपने लिए बनाया
सपना टूट रहा
नदी तोड़ तटबन्ध बहे तो
हाहाकार लगे।